सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग 22

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[२१, २२, २३ भाग]

●

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

सम्पादक :

पं० देवचन्द जी शास्त्री, सहारनपुर

●

प्रबन्ध-सम्पादक :

बैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला
यादगार बकुतला, सहारनपुर

●

प्रकाशक :

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

●

मुद्रक :

पं० काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'
साहित्य प्रेस, सहारनपुर

●

सन् १९६९] सर्वाधिकार सुरक्षित [न्यौछावर ३ रु.

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[द्वाविंश भाग]

प्रवक्ता :

पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

ज्ञान और ज्ञेयके परिचयकी आवश्यकता—सच्चे ज्ञानसे अर्थकी सिद्धि होती है अर्थात् सत्य ज्ञान होनेसे सत्य प्रयोजनकी सिद्धि होती है, पदार्थोंके सत्य स्वरूपकी जानकारी होती है और सत्य स्वरूपकी प्राप्ति होती है और मिथ्या ज्ञानसे भ्रामक ज्ञानसे पदार्थकी सिद्धि नहीं होती, प्रयोजन भी जो वास्तविक है आत्माका सत्य शान्ति निराकुलता प्राप्त होना वह भी नहीं बनता, पदार्थके सही-सही स्वरूपकी प्राप्ति भी नहीं है, जानकारी भी नहीं है। इस कारण यह जरूरी है कि हम लोगोंको यदि पदार्थोंका सत्य स्वरूप जानना है, अपने शान्ति प्रयोजनकी सिद्धि करना है तो सच्चा ज्ञान प्राप्त करें। तो इस ग्रन्थमें पहिले सच्चे ज्ञानकी ही परिभाषा चल रही है कि सच्चा ज्ञान होता क्या है ? किस प्रकारका है ? अब यहाँ दो बातें जाननेके योग्य हो गयी—एक तो ज्ञानको जानो कि ज्ञान होता किस रूपसे ? और किस स्वरूपका है ? दूसरी बात सब पदार्थोंका स्वरूप जानो कि ज्ञानके द्वारा जो कुछ जाना जाता है उसका स्वरूप कैसा है ? इसको संक्षेपमें कहें तो ज्ञान और ज्ञेय, इन दोकी जानकारी करनी है। ज्ञानका स्वरूप क्या है ? और ज्ञेयका स्वरूप क्या है ?

ज्ञेयके परिचयके साथ ज्ञानका परिचय होनेका महत्त्व—कुछ लोग तो ऐसे होते कि इतनेमें ही तुष्ट रहते कि चीज खा लें, स्वाद आना चाहिए। और कुछ लोग इस जिज्ञासामें रहते हैं कि चीज है क्या ? कैसे बनी ? कहांसे आई किस तरह बनाई गयी ? तो जैसे दो प्रकारके रुचिया यहां भी पाये जाते हैं—एकका तो इतना ही मतलब है कि खानेका स्वाद लेना, मौज करना, और एक—खानेका स्वाद लेना, मौज करना और जिस चीजको खा रहे उस चीजका परिज्ञान करना, किस तरह बनी, कैसे बनी, कैसे बनाई जाती है ? आप किसको महत्त्व देंगे दुनियावी दृष्टिसे ? जो केवल खानेका ही स्वाद लेता है, मौज मानता है उसे आप उतना चतुर न समझेंगे जितना चतुर उसे समझेंगे कि खानेका मौज भी ले और यह खाना बना किस तरह,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसके रग-रगकी बात भी जान जाय । तो यों समझिये कि ज्ञेय तत्त्वोंको जानकर उनका स्वरूप पहिचानकर उस स्वरूपके जाननेमें ही व्यस्त रहता है और उससे ही अपनेको तृप्त मानता है. एक तो ऐसा पुरुष, दूसरा ऐसा पुरुष कि ज्ञेय तत्त्वको सही जानकर तृप्ति माने, पर साथ ही यह भी काक्षांसा है कि जिस ज्ञानने जाना उस ज्ञान का क्या स्वरूप है । मुकाबलेतन जो दो बातें रखी हैं जैसे भोज्य और भोजन, दोनोंका ज्ञान. इसी तरह ज्ञेय और ज्ञान दोनोंका ज्ञान । इसमें अन्तर इतना है कि भोज्य भोजन वाला तो भोजनकी बातको जरा भी न जाने और भोज्य पदार्थ स्वादिष्ट खाये तो वह मौज मान लेगा, तृप्त हो लेगा । लेकिन यहाँ केवल ज्ञेयको जाननेसे काम नहीं बनेगा, किन्तु ज्ञानको भी ज्ञेय बना डालें, ज्ञानका भी स्वरूप जानें तो वास्तविक तृप्ति हो सकती है । अन्तर अब इतना है कि कोई पुरुष ज्ञानके सम्बन्धमें कुछ थोड़ा सा ही जानकर तृप्त हो लेता है और विद्वान पुरुष उस ज्ञानके सम्बन्धमें बहुत-बहुत जानकारी करते ही रहते हैं और अघाते नहीं और इस ही वृत्तिमें तृप्त रहते हैं । तो यहाँ ज्ञान और ज्ञेय दोनोंके स्वरूप जाननेकी बात कही जा रही है ।

ज्ञानका परिचय ज्ञान तो उसे कहते हैं जो हितकी बातमें लगादे और अहितकी बातसे हटा दे अथवा ज्ञान उसे कहते हैं जो स्व और परकी जानकारी करा दे । ये जो दो ज्ञानके लक्षण कहे हैं इनमें अन्तर भी है और नहीं भी है । जैसे धर्मका लक्षण कहा है जो वस्तुका स्वभाव है सो धर्म है और धर्मका लक्षण यह भी कहा है कि जो संसारके दुःखोंसे छुटाकर उत्तम सुखमें पहुँचा दे सो धर्म है । अब बतलावो धर्मके इन दो लक्षणोंमें अन्तर है या एक बात है ? अन्तर है भी, नहीं भी है । अन्तर तो स्पष्ट है । जब वचन निराले निराले हो गए और उनका तात्कालिक भाव भी न्यारा-न्यारा है, जो दुःखोंसे छुटाकर सुखमें पहुँचा दे उसे धर्म कहते है यह सुनकर कुछ अर्थ और लगाया जायगा तथा वस्तुके स्वभावको धर्म कहते हैं यह सुनकर अर्थ और लगाया जायगा । सुननेमें ये लक्षण न्यारे-न्यारे जंच रहे हैं लेकिन प्रयोज्य प्रयोजक भावसे दोनोंमें अन्तर नहीं है । अरे वस्तुका स्वभाव धर्म है । ऐसे धर्मकी जो दृढ़तासे श्रद्धा करेगा और धर्मके इस स्वरूपको निरखता रहेगा वह ही पुरुष तो दुःखों से छूटकर सुखमें पहुँचेगा, तब अन्तर न रहा, इसी प्रकार ज्ञानके सम्बन्धमें जो दो बातें रखी गई हैं, जो हितमें लगा दे और अहितसे हटादे उसे ज्ञान कहते हैं, और एक इन शब्दोंमें कहना कि जो अपनी और परकी जानकारी करा दे उसे ज्ञान कहते हैं । तो सुननेमें अन्तर है. लेकिन जो स्व पर व्यवसायी होगा ज्ञान उस हीमें यह सामर्थ्य है कि हितमें लगा दे और अहितसे हटा दे । इस लिए प्रयोज्य प्रयोजक पद्धतिसे इनमें अन्तर न रहा । प्रयोज्य मायने मतलबकी चीज और प्रयोजक मायने मतलब सिद्ध कराने वाली चीज । जो ज्ञानका लक्षण है, जो स्वपर व्यवसायी हो, जो अपनेको और परको जना दे उसे ज्ञान कहते हैं ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानके भेद और प्रत्यक्ष ज्ञानके भेदोंका स्मरण -उस ज्ञानके मूलमें दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञान तो विशद ज्ञानको कहते हैं, स्पष्ट ज्ञानको कहते हैं और परोक्ष ज्ञान उसे कहते है जो स्पष्ट न हो। स्पष्ट ज्ञान जिसका लक्षण है ऐसे प्रत्यक्षके दो भेद हैं— सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो व्यवहारमें स्पष्ट समझा जाता है और इन्द्रिय मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है। इसका नाम सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष इस कारण रखा कि वास्तवमें तो है यह परोक्षज्ञान, जो पराधीन ज्ञान हो उसे परोक्षज्ञान कहते हैं, इन्द्रिय और मनके सहारेसे जिस ज्ञानकी उत्पत्ति हो वह ज्ञान परोक्ष ज्ञान कहलाता है। तो इस तरहकी पराधीनता होनेपर भी जो इन्द्रियसे साक्षात् जाना जाता है वह स्पष्ट जाना जाता है। इस कारण उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। पारमार्थिक प्रत्यक्ष जो एकदम प्रत्यक्ष है, स्पष्ट भी है और इन्द्रिय मनकी आधीनता भी नहा है, केवल आत्माके द्वारा ही उसका परिज्ञान हो जाता है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। यदि हम इन्द्रिय और मनसे अधिक काम न लें, इन्द्रिय और मनको विश्राम दे दें ऐसा समझकर कि हमने संसारका सारा राज जान लिया है कि यहाँ सारका नाम नही है और साँसारिक बातोंकी ही जानकारीमें इस इन्द्रिय और मनका बहुत बड़ा सहयोग है अथवा इन्हींका काम है। जब मुझे संसारसे प्रयोजन न रहा तो हे इद्रिय और मन, तुम लोग अब निवृत्त हो! मुझे अब कुछ जाननेकी इच्छा नही रही। इन्द्रिय और मन को विश्रान्त कर दें तो यह है आत्माका एक परम तपश्चरण। और, इस ही परम तपश्चरणमें जो आत्मा रहेगा उसे त्रिलोकका ज्ञान उसके आत्मामें उत्पन्न हो जायेगा। अब फर्क यह है कि जब तक आकांक्षा है, चीजको जानने तककी भी इच्छा है तब तक वह परिपूर्ण स्पष्ट ज्ञान न होगा। और जब परिपूर्ण स्पष्ट ज्ञान है तब वहाँ किसी तरहकी इच्छा न रहेगी, जानने तककी भी इच्छा न रहेगी, ऐसा पहिले समझलें, नही तो कोई मुझे तीन लोकका ज्ञान हो जायगा इसलिये मैं इन्द्रिय और मनसे कुछ नही जानना चाहता हूं, ऐसे भावसे, जानकारीसे इन्द्रिय और मनकी जानकारीको दबायें, विश्रान्त करें तो उससे सिद्धि न होगी। मूलतः यह भाव आये कि मुझे कुछ भी जानने से प्रयोजन नही। अन्यकी बात तो दूर जाने दो सुख, आकांक्षा भोग, साधन ये तो दूर ही रहो, मुझे तो कुछ जानने तक की भी इच्छा ही। स्वयं शान्त होकर जैसे यह रह सके सो रहे. ऐसी साधनाका फल है जो पारमार्थिक प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न हो रहा है। पारमार्थिक प्रत्यक्षमें अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञान विकल हैं केवलज्ञान सकल है? अर्थात् कुछ ज्ञान तो अधूरे हैं, समस्त तीन लोक, तीन कालके पदार्थोंको नही जान सकते और जबकी सकलज्ञान, केवलज्ञान, परिपूर्णज्ञान है।

परोक्षज्ञानके भेदोंका स्मरण – परोक्ष ज्ञानके स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क अनुमान आगम ऐसे ५ भेद कहे गए हैं। पहले जाने हुए पदार्थका ख्याल आना सो स्मरण ज्ञान है पहले जाने हुए पदार्थका स्मरण होना और सामने उपस्थित पदार्थका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्यक्ष होना इन दोनोंके मेलमें उस ही से सम्बन्धित जो ज्ञान होता है वह प्रत्यभिज्ञान है। जैसे यह वही पुरुष है जिसे बम्बईमें देखा था, अथवा यह पुरुष उस ही पुरुषके समान है, यह लड़का अपने बापकी तरह है ये सारे ज्ञान प्रत्यभिज्ञान हैं। तर्क ज्ञानमें तर्क वितर्क विचार चलते हैं तर्कका आधार है अविनाभाव इसके बिना यह नहीं हो सकता इसलिए यह है तो वह जरूर है। इस ही आधारपर सब कानून नियम धारा, सब इसके आधारपर बने हैं, कोई किसी पद्धतिसे अनुमान ज्ञान कहते हैं एक चीजको देखकर दूसरेका अनुमान बनानेको। दूसरेका सच्चा ज्ञान करना। अंदाजा करनेको अनुमान नहीं कहते किन्तु साधन देखकर साध्यका दृढ़तासे ज्ञान करनेको अनुमान कहते हैं आगम है भगवत्प्रणीत शास्त्र वचन।

परिच्चेय वस्तुकी सामान्यविशेषात्मकता—इन सब ज्ञानोंका सविस्तार वर्णन करनेके बाद ज्ञेय पदार्थका जानना भी जरूरी है इस कारण यह प्रश्न किया गया था कि उस ज्ञानके द्वारा जो कुछ जाना जाता है वह पदार्थ किस तरहका होता है, क्या होता है, ज्ञानका विषय क्या है ? तो उत्तर दिया कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ ज्ञानका विषय है। जितने भी लोकमें पदार्थ दृष्टिगत होते हैं अथवा जाननेमें आते हैं वे सब पदार्थ सामान्यविशेषात्मक हैं। सामान्यके मायने वह धर्म जो धर्म अन्य पदार्थोंमें भी मिले और उसमें भी मिले, विशेषके मायने वह धर्म जो धर्म उस हीमें मिले। ऐसी बात सब पदार्थोंमें है या नहीं ? सबमें है। आप कहेंगे कि आत्मा और पुद्गल इनमें तो कुछ मेल हो नहीं बैठता। रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले ये सारे भौतिक पिण्ड पुद्गल और कहाँ यह अमूर्त चेतन आत्मा, इन दोनोंमें सामान्य धर्म कौन सा हो जायगा ? तो इसका उत्तर सुनिये ६ तो सामान्यगुण हैं ही। सत्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व। इनकी तो पूर्ण समानता है जीवमें पुद्गलमें। और और कुछ भी उपभेद बताये जा सकते हैं। तो सामान्य विशेषात्मक सभी पदार्थ होते हैं यह तो हुआ एक कथन विस्तार रूपसे तिर्यक रूपसे। अब आयतरूपसे भी सामान्य विशेषात्मक समझ लीजिए अभी तो अनेक पदार्थोंमें जो एक साथ मौजूद हैं उनमें सामान्य विशेषात्मककी बात कही। अब एक ही पदार्थमें सामान्यविशेषात्मक क्या है सो समझिये। एक ही आत्मा अनादि अनन्त सदा शाश्वत् वहीका वही है, उसमें जो चैतन्य आदिक शाश्वत धर्म हैं वे वहीके वही हैं। इस तरह तो उसमें सामान्य बात पाई गई, पर कभी तिर्यञ्च है, कभी नरक है, कभी मनुष्य है, कभी देव है, कभी कुछ है, कभी भगवान भी बनेगा, उसके बाद फिर दूसरा भव नहीं होगा, पर भेद तो हुआ ये सब विशेष हैं। वह विशेष पहिलेके विशेषमें नहीं पाया जाता। यों सामान्य विशेषात्मक आत्मा है। यों ही सामान्य विशेषात्मक सभी पदार्थ हैं।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थमें बुद्धिभेदको वस्तुभेद मानकर विशेषवाद में पदार्थ व्यवस्था—पदार्थोंके सामान्य विशेषात्मक पनेकी बात सुनकर वैशेषिकोंसे न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा गया और उन्होंने अपनी बात रखी कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक नही होते, किन्तु सामान्य भी एक पदार्थ है, विशेष भी एक पदार्थ है। और जिस चीजमें तुम सामान्य विशेषपना जोड़ रहे हो वह भी एक पदार्थ है। तुम सामान्य विशेषात्मक बात किसमें जोड़ रहे हो? द्रव्यमें, पदार्थमें। लेकिन यह जानो कि इस द्रव्यमें जिसे आप समूचा एक झलकमें देख रहे हो और मान रहे हो वह भी एक नही है। वहाँपर तीन चीजें हैं द्रव्य गुण और क्रिया। तुम द्रव्य, गुण, क्रियाके मेल वाले किसी एक पिण्ड को एक मानकर उसे ही सामान्य विशेषात्मक मान रहे हो तो ऐसी बात नही किन्तु वहाँ तो अब ६ चीजें हो गयी। जिसे तुम एक निरख रहे हो किसी भी एकको जिसको तुम देखते वह ६ चीजोंका पिण्ड है द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, इन ५ का तो जिक्र ही था, लेकिके ये ५ निराले निरालें रहे ऐसा बोध तो नही हो रहा इसलिए एक समवाय भी साथमें लगा हुआ है। यों ६ पदार्थोंकी व्यवस्था बताने वाले वैशेषिकों के प्रति पहिले कहा गया था कि उन ६ पदार्थोंमेंसे जो द्रव्य पदार्थ है, जिनके ६ भेद किए गए हैं उनका जैसा स्वरूप वर्णित किया गया है विशेषवादमें, वह सिद्ध नही होता। तो द्रव्य नामक पदार्थका निराकरण करनेके बाद अर्थात् सामान्य विशेष रहित, गुण क्रियासे भिन्न, अव्याप्ति अतिव्याप्ति दोषयुक्त जो द्रव्यका स्वरूप बताया जा रहा था और उनकी संख्या कही जा रही थी, उन सबका निराकरण किया जा चुका है। अब गुण पदार्थकी मीमांसा चल रही है।

गुण पदार्थकी मीमांसा समझनेके लिये तथ्यभूत किञ्चित् ज्ञातव्य— गुण कोई पदार्थ नही है यद्यपि गुणका व्युत्पत्त्यर्थ है गुण्यते भिद्यते इति गुणः। जो अलग करदे उसे गुण कहते हैं। लेकिन यह अलग करना, अलग होना केवल बुद्धिमें है पदार्थमें नही है। जब हम एक पदार्थको देख रहे हैं, यह बेन्च है और उसे देखते ही यह समझमें आता कि इसका रंग तो अच्छा है। देखो इस बेन्चमें जो यह हरा रंग है वह कितना सुहावना लगरहा है लो ऐसा कहनेमें बेन्च और रंगमें भेद डाल दिया बेन्च में रंग है ठीक हैं। कटोरदानमें लड्डू है। जैसे उस आधार आधेयमें भिन्नता है तो आधार आधेयपनाकी मुद्रा बनाकर जो बेन्चमें रूपकी बात कही है तो क्या कटोरेमें लड्डूकी तरह है? क्या यों भिन्न है? अभिन्न होनेपर भी हम अपनी समझमें उसका भेद कर लेते हैं। सो अभेद होनेपर भी बुद्धि द्वारा जिसकी बुद्धि के अनुरूप भेद किया जाय उसे गुण कहते हैं। लेकिन गुणके इस लक्षणपर विशेष ध्यान न देकर जिसमें जैसी कुछ समझ आयी गुण कह बैठते हैं। गुण होते हैं शाश्वत, अनादि अनन्त, लेकिन लोग भी व्यवहारमें जिस चाहेको गुण कह देते हैं। और, की तो बात जाने दो, अवगुणको भी गुण कह देते हैं। तो यों ही गुणका ऊपरी लोकरूढ़ि भाव लेकर गुणोंकी संख्या बतायी गई है विशेषवादमें कि गुण २४ प्रकारके होते हैं। उनका यह २४ प्रकारका बंधन बाँधना इतना मंहगा पड़ेगा कि न तो २४ संख्याकी सिद्धि बनेगी और न उन गुणोंके स्वरूपकी सिद्धि बनेगी। गुण न २३ होते न २५।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बाह गुणोंकी संख्याका बन्धन क्योंकि गुणोंकी संख्याका कोई बन्धन ही नही । बन्धन तो वहाँ बने जब कोई सद्भूत निराली चीज हो । जैसे डलियामें केले रखे हैं, उनको गिनकर कह देंगे कि १५ केले हैं, ठीक है, वह बद्ध पिण्ड है, संख्या बन गयी, पर गुण नाम तो उनका है कि जो भी पदार्थ है अखण्ड, पदार्थ अनगिनते होते ही हैं, उन पदार्थोंका स्वरूप जाननेके लिए उनकी जो खासियतें बतलायी जाती हैं उनका नाम गुण है तो खासियतोंकी दृष्टि जो जितना जानकार है उतना ज्यादह बना लेगा। तो गुणोंमें संख्या नहीं बन सकती।

गुणोंकी संख्याके व्यवहारका आधार और उसके विरोधमें गुणोंकी अनर्गल संख्याका विधान—समझनेकी जितनी सीमा है और उस सीमामें गुणोंकी जितनी सीमा है और उस सीमामें गुणोंकी संख्या बतायी गई है. जैसे पुद्गलमें चार गुण हैं रूप, रस, गंध, स्पर्श । पर ये समझनेके लिए बताये हैं । संख्या नियम सही करके न कहा जायगा कि पुद्गलमें चार ही गुण हैं। हैं गुण चार समझनेके क्षेत्रमें चार गुणोंका बताना पर्याप्त है और उससे फिर व्यवहार भी ऐसा ही चला, उपदेश पद्धति भी यों रही। आत्मामें गुण कितने हैं? दो हैं ज्ञान और दर्शन। तो कोई कहता ३ हैं—श्रद्धा, ज्ञान. चारित्र । कोई कहता चार हैं ज्ञान. दर्शन, आनन्द शक्ति। अरे जो जितने कहे सबकी बात ठीक है आखिर अखण्ड पदार्थमें खासियतें निरखी जा रही हैं जिससे कि हमें अखण्ड पदार्थका परिचय हो जाय। तो गुणको तो ऐसा असीम रखना था और जाननेके प्रयोजनवश उसमें परख करते जाते, पर ऐसा न किया जाकर द्रव्यों की भाँति गुणोंकी भी संख्या नियत की गई है विशेषवादमें और वे गुण बताये गए हैं २४ प्रकारके। गुणोंकी संख्याको बताने वाला वैशेषिक सूत्र है "रूपरसगंधस्पर्शाः संख्यापरिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्च तु गुणाः। इस सूत्रमें १७ गुणोंके नाम दिये गये हैं और च शब्द बोलकर ७ गुण और ऊपरसे लिए गए हैं। इस तरह गुणोंकी संख्या २४ बनाई गई है। वे २४ गुण कौन हैं? अलग-अलग नाम सुन लीजिए ! रूप रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष प्रयत्न ये १७ तो सूत्रोक्त हैं और संगृहीत हैं—गुरुत्व द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म, शब्द। इस तरह ये २४ गुण कहे गए हैं. पर इन गुणोंकी संख्या स्वरूपकी व्यवस्था करने वाला कोई एक लक्षण तो हो, गुण किसे कहा करते हैं? वह एक लक्षण कहा गया है—"द्रव्याश्रयानिर्गुणाः गुणाः। इस लक्षणको स्याद्वादी भी मानते हैं और विशेषवादी भी। जो द्रव्यके आश्रय तो रहता हो, पर जिसमें और गुण न पाये जाते हों उसे गुण कहते हैं। जैसे पृथ्वी द्रव्य है, इसमें रूप पाया जाता है. पर रूपमें और कुछ नहीं पाया जाता। वह रूप इकला ही गुण रूप है। इसलिए रूप गुण हो गया। गुणका यह लक्षण किया जा रहा है और इस लक्षणके माध्यमसे भी यदि बात चलती रहती तो भी ठिकाना रहता, लेकिन यह गुणका लक्षण भी टूट जाता है। इन २४

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुणोंका जब विश्लेषण करेंगे तब समयपर विदित होगा।

शंकाकार द्वारा रूप रस गंध स्पर्श गुणकी व्यवस्थाका प्रस्ताव—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि गुण २४ ही हैं। उनमेंसे जो पहिले चार बताये हैं रूप, रस, गंध, स्पर्श, सो देख लो ना, रूप द्रव्यके सहारे है। रस, गंध, स्पर्श द्रव्यके सहारे हैं और इन गुणोंमें अन्य गुण पाये नही जाते इसलिए गुण सही है और जानकारीमें भी स्पष्ट आ रहा है। देखो ! रूप चक्षुइन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें आता। आँखे खोलकर देखा ! जो समझमें आया वह क्या है ? रूप ही तो है। और, वह रूप पृथ्वी, जल, अग्नि इन तीनमें रहता है। वायुमें रूप नही रहता, रहता हो तो बताओ। इस समय जो हवा चल रही बताओ वह कायी, पीली, नीली आदि किस रंगकी है ? अरे हवामें रूप गुण नही है, रूप गुण है पृथ्वी, जल और अग्निमें। और, दूसरा गुण है रस। रस जाना जाता है रसना इन्द्रियसे जिह्वासे। और यह गुण मिलेगा दो द्रव्योंमें पृथ्वी और जलमें। वायुमें रस नही। बताओ यह वायु जो चल रही है वह मीठी है कि कड़वी ? और, अग्निमें रस हो तो अग्निकी लपटें खा कर बताओ तो सही कि वह मीठी लपट है कि कड़वी आदिक ? तो रस दो द्रव्योंमें रहा पृथ्वी और जल इनमें गंध घ्राणेन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें आता। और, यह गंध केवल पृथ्वीमें मिलेगी अन्य तीन द्रव्योंमें न मिलेगी। वायुमें केवल स्पर्श है। कभी हवाके झकोरोंमें गंध मालूम होती है तो उसमें जो पृथ्वीके कण चले आये हैं हवा द्वारा उसकी गंध है। कभी जल जलमें गंध आने लगती है तो जलमें जो पृथ्वीके कण पड़े हैं मांस, मिट्टी, पृथ्वी, लोहू आदिक, ये सब पृथ्वी कहलाते हैं उनकी गंध है। तो गंध घ्राण इन्द्रियके द्वारा ग्रहण में आती है और वह पृथ्वीमें ही रहती है। स्पर्श—स्पर्श इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमे आता है और वह स्पर्श पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारोमें है। इस तरह देखो ! व्यवस्था भी सही समझमें आ रही है। लोगोंको ऐसा लग भी रहा है कि पृथ्वी ठढ़ी है, पानी ठंढा है, आग गर्म है हवा ठंढी है, गर्म है आदि। तो इस तरह रूपादिक चार गुणोंकी व्यवस्था है लोगोंको स्पष्ट समझमें भी आता है और तुम उसे मना करते हो कि यह गुण कोई लाक्षणिक नही है और इसमें अटपटापन है। कैसे है अटपटापन ? इस तरह शंकाकार रूप, रस, गंध स्पर्श गुणोंकी सिद्धि कर रहा है।

विशेषवादसम्मत रूपादि गुणोंकी व्यवस्थाकी मीमांसा—शंकाकार रूप रस गंध स्पर्शको गुण तो मानता है, किन्तु इसके माननेमें दो तीन बातोंका अंतर है—रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं तो गुण, स्याद्वादियोंने भी माना है। पुद्गलका रूप, रस, गंध, स्पर्श गुण है, किन्तु स्याद्वाद-सम्मत तो गुण इस प्रकार है जैसे कि पुद्गल द्रव्य सदा स्थायी रहता है तो द्रव्यके रूपशक्ति, रसशक्ति, गंधशक्ति, स्पर्शशक्ति, भी सदा रहती है और फिर उस रूपमें जो व्यक्तरूप होता है—काला, पीला, नीला, लाल सफेद आदिक ये रूप गुण नही हैं, किन्तु रूप गुणकी परिणति है। इसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकार जो व्यक्त है रस खट्टा, मीठा, कड़ुवा, चरपरा कषायला आदिक ये रस गुण नहीं है, किन्तु रस गुणकी परिणति है, व्यक्तरूप है, पर्याय है। गंध गुणमें भी सुगंध और दुर्गंध ये दो गुण नहीं हैं किन्तु गंध नामकी शक्तिकी पर्याय है। स्पर्शके जो व्यक्तरूप हैं—ठंढा, गरम, रूखा, चिकना आदिक ये स्पर्श गुण नहीं है किन्तु स्पर्शगुण की पर्याय हैं। गुण और पर्यायमें अन्तर क्या है ? जैसे आत्मामें श्रद्धा गुण है वह सदा रहता है पर कभी मिथ्यात्व हो गया फिर सम्यक्त्व हो गया तो यह मिथ्यात्व, सम्यक्त्व श्रद्धागुणकी पर्याय है। जैसे अंगुली एक द्रव्य है और सीधी हुई, टेढ़ी हुई, यह अंगुलीकी पर्याय है। पर्याय मिट जाती है गुण नहीं मिटता। जैसे कालापन मिट जाय और नीलापन आ जाय तो यह तो बदल हो गई पर्यायोंकी पर जो रूपशक्ति है उसकी बदल नहीं होती। रूपशक्तिका परिणमन अब नीलापन हो गया। कालेपर नीला पोत दिया जाय उसकी बात नहीं कह रहे किन्तु स्वयं जो काला है वही अपने आप नीला हो जाय जैसे आम सबसे पहिले काला होता है। जब बौरमें सरसोंके दाने बराबर आमका फल रहता है तो उसका काला रूप होता है, और अपने आप ही वह थोड़ा बढ़ा कि नीले रूपमें आ जाता है। तो पर्याय अलग चीज है, गुण अलग चीज है, लेकिन वैशेषिक सिद्धान्तमें सब गुण कहलाते हैं। जो पर्याय हैं स्निग्ध रूक्ष वगैरह ये सब गुण ही हैं, सो कोई गुण नित्य होता है कोई गुण अनित्य होता है ऐसा कह कर अपनी व्यवस्था बनायी जाती है, किन्तु गुण जितने हैं वे सब नित्य ही होते हैं, गुणकी जो पर्यायें हैं वे अनित्य होती हैं एक अन्तर तो यह है स्यादवादियोंके गुण सिद्धान्तमें और विशेषवादियोंके गुण सिद्धान्तमें अब दूसरा अन्तर सुनिये।

रूपादिगुणोंकी विकलरूपसे रहनेकी व्यवस्थाकी असिद्धि – स्याद्वाद व विशेषवादके गुणोंमें दूसरा अन्तर यह है कि स्याद्वाद सिद्धान्तमें तो चार गुण प्रत्येक पुद्गलमें एक साथ पाये जाते हैं। घट है वह खाया नहीं जाता मगर रस उसमें भी है। अग्नि है खायी नहीं जाती मगर रस उसमें भी है। जो भी पौद्गलिक चीज है सबमें रूप, रस, गंध, स्पर्श चारोंके चारों एक साथ पाये जाते हैं, किन्तु विशेषवादमें यह वर्णन है कि गंध केवल पृथ्वीमें मिलेगी, जल, अग्नि वायुमें गंध नहीं है। रस केवल पृथ्वी और जलमें मिलेगा वायु अग्निमें नहीं। रूप पृथ्वी, जल, अग्नि तीनमें मिलेगा वायुमें नहीं. और स्पर्श चारोंमें मिलेगा। यह कथन सुननेमें तो भला लगता है कि बात कुछ सच सी लग रही है। हवामें रूप क्या, आगमें रस क्या ? तो ये हम लोगों को जो प्रकट जच रहे हैं उस अपेक्षाका यह कथन है, किन्तु युक्तिका कथन नहीं है। जहाँ रूप, रस, गंध, स्पर्शमें एक भी शक्ति पायी जायगी वहाँ चारोंके चारों होंगे. यह नियम है। हमें चाहे एक जचे, दो जचें या चारों जचें। जहाँ एक है वहाँ चारों हैं, और युक्ति बताती है कि चारों धर्म न हों एक साथ पदार्थोंमें तो आपको विदित होगा कि हवाका भी पानी बन जाया करता है। कोई दो किस्मकी हवा मिलायी और पानी बन जाता है तो उपादान तो हवा है अन्यथा पानी बना कैसे ? उन हवाओंसे। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पानीमें जो रस आया वह कहाँसे आया ? रस यदि कारण उपादानमें है तो कार्यमें है तो कार्यमें आ सकता है और कारण उपादानभूतमें रस न था तो किसी भी प्रकार कार्यमें रस नहीं आ सकता। इससे सिद्ध है कि हवामें रस है। यह अनाज पृथ्वी कहलाती है वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार। यहाँ वनस्पति पदार्थ तो नहीं माना गया। जितने पेड़ हैं अंकुर हैं फल हैं, फूल हैं ये सब पृथ्वी हैं। यदि पृथ्वीको खाया मायने दृष्टान्तमें जौ खाया, जौमें हवा बनती है। कोई आदमी केवल जौ की ही रोटी बना कर खा ले तो उसके पेटमें हवा बहुत बनती है तो बताओ खाया तो पृथ्वी है और बनी उससे हवा है तो यह हवा आयी कहाँसे ? कारण उपादानमें जो गुण नहीं है वह कार्यमें व्यक्त नहीं हो सकता। तो पृथ्वीमें हवा है। कभी जंगलमें बाँसोंकी रगड़से अग्नि पैदा हो जाती है तो अग्नि कार्य हुआ और वह उत्पन्न होती है पृथ्वीसे बाँस पृथ्वी है तो अब इसमें रूप आ गया ना अग्निमें विशिष्ट रूप माना गया है तो यह रूप आ कहाँसे गया ? अग्निका उपादान जो बाँस है, पृथ्वी है उसमें यदि वह रूप नहीं है तो रूप कहाँसे आ सकेगा ? तो सिद्ध है कि पृथ्वीमें रूप भी है तो युक्तियोंसे वह सिद्ध है कि रूप, रस, गंध, स्पर्श इन ४ गुणोंमेंसे एक भी गुण हो तो हाँ चारोंके चारों पाये जाते हैं। ऐसा वर्णन करना युक्त नहीं कि रूप केवल तीनमें ही पाया जाता। वायु भी रूपादिमान है पौद्गलिक होनेसे, स्पर्शवान होनेसे। जहाँ स्पर्शगुण मिला वहाँ सभी गुण हैं। विशेषवादमें स्पर्शगुण चारोमें है, जहाँ स्पर्श है वहाँ शेष तीन भी अवश्य हैं। इस तरह ये चारो भी चारो गुणोंसे युक्त हैं। तो जब पुद्गल अब रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले हो गए तो उनमें विकारका नियम बनाना कि गंध केवल पृथ्वीमें है रस केवल पृथ्वी जलमें है, रूप केवल पृथ्वी, जल, अग्निमें है, स्पर्श चारोमें है, यह नियम बनाना युक्त नहीं है।

रूपादिगुणोंके आविर्भाव व तिरोभावकी युक्तता—रूपादिगुणोंका आविर्भाव तिरोभावकी बात कहो तो वह ठीक है, विरुद्ध नहीं है। पृथ्वीमें गंधका आविर्भाव नहीं, अथवा रसका आविर्भाव है तो उससे स्पर्शका आविर्भाव नहीं। प्रथम तो पृथ्वीमें चारों ही व्यक्त मालूम देते हैं। जैसे कोई फल उठाया या कोई कड़ी चीज ली, कोई कड़ा फल खाया, मानो मसूरीकी चिरवटी खायी उसमें गंध भी आती है रूप भी है। वहाँ ऐसा विश्लेषण वैशेषिक लोग कहते हैं कि पृथ्वीमें जो रूप नजर आ रहा है वह अग्नि तत्त्व है, रस जल तत्त्व है, गंध पृथ्वी तत्त्व है। ऐसा भी कोई कोई लोग कहते सो यह सब उन मतवाला कथन है। जहाँ जो चीज ज्यादह भली लगी, जो अधिक जचनेमें आयी उसको ही मान लेना युक्तिसिद्ध बात नहीं है। आविर्भाव तिरोभावकी बात देखो तो वह युक्त है। जैसे गरम जल है। गरम जलमें अग्नि तत्त्वका सम्बन्ध हुआ ना तो उसमें भासुररूप होना चाहिए, क्योंकि अग्निका सम्बन्ध हो गया। जैसे अग्निमें भासुररूप है चमकदार रूप है इसी तरह जलमें भी भासुररूप माना है वैशेषिक सिद्धान्तने, किन्तु तिरोभाव रूप माना है। तो अब देखिये ना कि जलमें अग्निके

http://sahjanandvarnishastra.org/

भासुररूपका तिरोभाव है, पर है तो सही, अथवा स्वर्णको ये मानते हैं कि अग्निका पहिला बेटा सोना है। ऐसा उनके सिद्धान्तमें कहा है कि अग्निका जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह पहिला पुत्र है स्वर्ण। तो स्वर्णमें तैजसपना बिल्कुल साफ मान लिया गया, अग्नि तैजस है, और अग्निका पुत्र है सोना तो तैजसपना बिल्कुल प्रसिद्ध माना गया है। वह तैजसत्त्व तो बिलकुल तिरोभूत है। उस स्वर्णमें जब अग्निका सम्बन्ध होता है तब उस स्वर्णमें अग्निका आविर्भाव होता है। जब सोना गरमकर दिया तभी तो उसमें उष्णस्पर्श है, लेकिन उष्ण स्पर्श तो पहिले स्वर्णमें होना चाहिए, क्योंकि वह भी अग्निका लड़का है। सो देखो शंकाकारने स्वर्णमें उष्ण स्पर्शको तिरोभूत माना है कि स्वर्णमें उष्ण स्पर्श दबा हुआ है अग्निके सम्बन्धसे उसका आविर्भाव होता है। तो यों कभी कोई गुण प्रकट होता है कभी कोई दब जाता, यह बात तो हम मान सकते हैं, लेकिन किसीमें तीन ही गुण हों, दो ही हों एक ही हो, यह बात नहीं मानी जा सकती, क्योंकि जिसमें एक गुण है फिर उसमें त्रिकाल भी कोई दूसरा गुण नहीं आ सकता, इस तरह रूप, रस, गंध, स्पर्श गुणके बारेमें जो वैशेषिक सम्मत स्वरूप है वह स्वरूप घटित नहीं होता।

गुण गुणीमें बुद्धिकृत भेदका वर्णन—गुण और गुण पर्याय ये तो समझने के लिए बुद्धिके द्वारा भेद किए गए, किन्तु एक बुद्धिके द्वारा भेद करना और एक वस्तु में भेद होना, ये दो अलग-अलग विषय हैं। जैसे आजकलका नया पैसा एक पैसा कहलाता है। एक पैसासे भी छोटा कुछ और होता है क्या ? अभी तक तो कोई मुद्रा नहीं निकली। तो एक पैसासे छोड़ा कुछ नहीं। रकममें छूनेमें, लेनदेनमें एक पैसासे छोटा कुछ नहीं है, लेकिन बुद्धि द्वारा तो उसमें भी भेद है आधा पैसा, पाव पैसा, एक एक पैसेका सैंकड़वां हिस्सा, एक पैसेका हजारवाँ हिस्सा। कोई गणितका हिसाब आ जाय तो उसमें एक पैसेका हजारवाँ हिस्सा बताया न जायगा क्या ? बताया जायगा, पर वस्तुमें तो कोई हिस्सा नहीं है। यह एक मोटा उदाहरण दिया है। एक समयमें एक परमाणु १४ राजू गमन करता है। एक समयसे कम कोई समय होता है क्या ? लेकिन बुद्धि यह कह देगी कि जब अणु एक जगहसे १५ राजू तक गया तो उस परमाणुने रास्तेके सारे प्रदेशोंको छुवा नहीं क्या ? और वहाँ क्रम नहीं हुआ क्या ? बुद्धि समयमें भेद डाल देगी, पर वस्तुतः समयमें भेद है ही नहीं। बुद्धि ऐसी पैनी भेदक होती है कि जहाँ भेद नहीं वहां भेद डाल देती है। यही हाल यहां हो रहा है कि पदार्थमें और रूप, रस, गंध, स्पर्शमें भेद नहीं है लेकिन बुद्धिने भेद डाला है। स्याद्वाद तो यह कहता है कि पदार्थमें और गुणमें, द्रव्यमें और गुणमें बुद्धिका भेद है, वस्तुतः भेद नहीं, पर विशेषवादमें यों माना है कि द्रव्यमें और गुणमें वस्तुतः भेद है, तो किसी एक वस्तुको समझनेके लिये जब उसमें विशेषतायें बताते हैं तो उनका नाम गुण है। जो ध्रुव विशेषतायें हैं वे गुण कहलाती हैं, जो अध्रुव विशेषतायें हैं वे पर्याय कहलाती हैं। वस्तुतः द्रव्य और पर्यायमें भी पदार्थसे भिन्नता नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुणत्वकी मीमांसा– अब रूप, रस, गंध, स्पर्श चार गुणोंकी मीमांसा करने के बाद ५ वाँ गुण विशेषवादमें कहा है संख्या । १, २, ३, ४ आदिक जो संख्यायें चलती हैं उनको भी लोग गुण कहते हैं। यह गुण है द्रव्यका। सुननेमें कुछ भलासा जचेगा कि ठीक कह रहे वे लोग कि संख्या भी गुण है। देखो ना ! चार चीजें पड़ी हैं और कहते हैं कि वे ४ हैं। तो वह ४ क्या है ? गुण है। लेकिन यहाँ गुणका अर्थ समझ लीजिये ! पहिला तो अर्थ यह है कि जो द्रव्यके आश्रय हो और गुणरहित हो उसे गुण कहते हैं। और, सूक्ष्म दृष्टिसे यह समझ लीजिये ! जैसे एक गुणमें डिग्रियाँ पा ली जायें, पर्यायरूप होनेके लिए कमी बेसी पाई जाय उसे गुण कहते हैं। जैसे रूप गुण है और रूप गुणका परिणमन हुआ है मानलो एक लाल परिणमन, तो उस लाल में कितनी डिग्रियाँ होती हैं ? कम लाल, तेज लाल और विशेष लाल। यों उसमें लाखों डिग्रियाँ हो सकती हैं। तो रूप शक्तिमें ये डिग्रियाँ पड़ी हुई हैं और उसमें उनका उस समय विकास होता है। आत्मामें गुण है । ज्ञान गुणमें डिग्रियां है कि नहीं ? हैं भी तो किसीको कम ज्ञान है, किसीको ज्यादह ज्ञान है और किसीको बहुत अधिक ज्ञान है। तो उनमें डिग्रियां पाई गईं। वे गुण कहलाती हैं। इन दो बातोंका ध्यान करके और गुणत्वके निर्णय करनेसे यथार्थताके परिचयको बहुत मदद मिलती है। तो वैशेषिक सम्मत अब गुण पदार्थकी मीमांसा की जाती है।

संख्याकार द्वारा संख्याके गुणत्वकी सिद्धि— शंकाकार कहता है कि संख्या वास्तवमें गुण है। १, २, ३ आदिक व्यवहारका कारणभूत है और उस संख्या का स्वरूप, मुद्रा कलेवर, एकत्व, द्वित्व, त्रित्व आदि यही है, जैसे कोई पदार्थ होता है ना, तो उसका कोई रूप होता है. मुद्रा होती है। जैसे बेञ्च है तो इतनी लम्बी चौड़ी इस ढङ्गकी है, तो उस संख्याकी क्या मुद्रा है ? उसका क्या रूप है ? कहते हैं कि एकत्व, द्वित्व, तृत्व यही उसका रूप है। और संख्या दो प्रकारकी होती है—एकद्रव्य और अनेक द्रव्य। जैसे एक ही चीजको निरखकर जाना कि १, यह भी तो एक संख्या हुई। यह संख्या एक द्रव्य है। चार चीजोंको देख करके संख्या की ४, तो यह संख्या अनेक द्रव्या है। अनेक द्रव्योंको विषय करके यह ४ संख्या बनी और यह संख्या प्रत्यक्षसे ही सिद्ध है। हर एक कोई झट यह कह देता है कि ये ५ अंगुलियां हैं, २ बेन्च हैं, तो संख्या प्रत्यक्षसे सिद्ध भी हैं। और, भेदपद्धतिसे भी सिद्ध होता है। ४ केले रखे थे। एक केला किसीको दे दिया, अब ये ३ रह गए। पहिले ३ थे, अब २ रह गए और ४ मिल गए तो अब ६ हो गए, इस तरहका जो उन संख्याओंमें परस्पर भेद पाया जाता, उससे भी सिद्ध है कि संख्या कोई वास्तविक चीज है और वह गुण है, क्योंकि संख्याका और दूसरा गुण वहाँ रहता । द्रव्याश्रया निर्गुणाः गुणाः तीसरा प्रमाण यह है कि संख्या निमित्तान्तरकी अपेक्षा करती है। ४ तक गिन लिया, अब जब ५ वाँ गिनते हैं तो ५ संख्या जाननेके लिए हमें उन ४ का ख्याल रखना पड़ता है, उन ४ की अपेक्षा करनी पड़ती है, तब हम ५ बना पाते हैं। तो यह संख्या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निमित्तान्तरकी अपेक्षा भी करती है इस कारण यह वास्तविक चीज है। चौथी बात अनुमानसे भी सिद्ध है। किस तरह कि १, २, ३, ४ आदिक जो ज्ञान हो रहे हैं ये किसी विशेषके ग्रहणकी अपेक्षा करके होते हैं। मतलब कि १, २ आदिक जो ज्ञान हो रहे हैं सो १, २ आदिक संख्या है तब ज्ञान हो रहे। जैसे हमें बेन्चोंका ज्ञान हो रहा है तो बेन्च कोई चीज है तब ज्ञान हो रहा है चीज न होती तो हमें ज्ञान न होता इसी तरह १, २ आदिक जो ज्ञान हो रहे हैं तो १, २ कुछ है तब तो ज्ञान हो रहा। और वह क्या है ? संख्या। तो १, २ आदिक जो ज्ञान होते हैं वे विशेषणके ग्रहणकी अपेक्षा करके होते हैं। विषयका ग्रहण करते हैं ये ज्ञान १ २ आदिक। उनका विषय क्या है ? संख्या। क्योंकि विशिष्ट ज्ञान होनेसे दण्डीकी तरह। जैसे डण्डा वाला मनुष्य है, तो डण्डा वाला मनुष्य होता है तब ही तो यह ज्ञान हुआ। इससे सिद्ध है कि संख्या कोई वास्तविक चीज है और वह है गुण। तो वैशेषिकका यह ५ वाँ गुण संख्याको सिद्ध कर रहा है।

संख्याको गुण माननेकी आशंकाका समाधान—समाधानमें कहते हैं कि संख्या संख्येय पदार्थसे अतिरिक्त और कोई चीज नहीं पायी जाती। ४ केले कहा तो उन केलोंको छोड़कर ४ संख्या कोई अलगसे चीज नहीं है। उनमें हमने अपनी बुद्धिसे एक व्यवस्था बनाई है कि ये ४ हैं, ये ६ हैं। कोई संख्या नामका पदार्थ या गुण अलग से हो और उसके कारण यह संख्या चलती हो सो बात नहीं है। संख्या तो असत् है। जैसे गधेके सींग कोई वस्तु नहीं इसी प्रकार संख्या भी कोई वस्तु नहीं। जिन पदार्थोंकी हम गिनती करते हैं वे पदार्थ ही संख्याके रूपमें जाने जा रहे हैं। संख्या नामका कोई गुण अलग हो सो बात नहीं। देखो ! जैसे ये पदार्थ हमको दिख रहे हैं ऐसे ही संख्या भी हमको दिख रही है। इससे सिद्ध है कि संख्या पदार्थसे कोई अलग चीज नहीं है। देखते ही बता देते हैं—२ बेन्च। तो बेन्च दृश्य है और संख्या भी दृश्य हो गई है और संख्याको दृश्य वैशेषिकोंने भी माना है। विशेषवादका एक सूत्र है—संख्यापरिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे कर्म च रूपिसमवायाच्चाक्षुषाणि। इतनी चीजें रूपी पदार्थोंके समवायसे चाक्षुष बन जाती है क्या ? संख्या। ४ केले रखे हैं, तो संख्या जो ४ बनी वह केलेके सम्बन्धसे बनी, अतएव उसकी संख्या भी आंखों दिख गई। परिमाण नामका जो गुण है वह क्या आँखों दिखता है ? लेकिन रूपी पदार्थोंका सम्बन्ध पाये हुए है परिमाण, इस कारण परिमाण भी आँखों दिख गया। पृथक्त्व—यह बेन्च भींटसे अलग है—तो इसको पृथक्त्व गुण कहते हैं। यह पृथक्त्व गुण क्या आंखों दिखने वाला पदार्थ है ? लेकिन यह द्रव्यमें समवाय सम्बन्ध रखता है सो वह भी चाक्षुष हो जाता है। संयोग दो थे, मिल गए तो क्या हो गया ? संयोग हो गया। तो क्या यह संयोग भी आँखों दिखता है ? आखोंसे तो यह और यह दोनों दिख रहे, किन्तु संयोगका समवाय है इस हाथमें इसलिए संयोग भी चाक्षुष हो गया। इसी तरह विभाग हो गए, टुकड़े हो गए। पहिले मिले हुए थे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और टुकड़े हो गए तो यह विभाग भी देखो आंखों नजर आ रहा, क्योंकि रूपी पदार्थों में इसका समवाय है, सम्बन्ध है। इसी प्रकार छोटा बड़ा, जैसे कहते लहुरा और जेठा दो भाई हैं और उनमें यह बात दिख रही है तो चूंकि उन भाइयोंमें परत्व अपरत्वका समवाय है ऐसे ही वहाँ भी दो चीजें ही नजर आना चाहिए, किन्तु वह गुण है और रूपी पदार्थोंमें उनका सम्बन्ध है इस कारण परत्व अपरत्व भी नजर आजाते हैं। इसी प्रकार कर्म याने क्रिया भी रूपी पदार्थके समवायसे चाक्षुष है। तो देखो ! संख्याको भी चाक्षुष माना है। इससे सिद्ध है कि संख्येय पदार्थको छोड़कर जिनकी संख्या बनायी जा रही है उन पदार्थोंको छोड़कर अन्य को संख्या नही उपलब्ध होती वह ही पदार्थ संख्या रूपमें, गुणबुद्धिमें आ जाता है। तो यह कहना कि प्रत्यक्षसे संख्या सिद्ध है, वह संख्या प्रत्यक्षसे सिद्ध नही, किन्तु प्रत्यक्षसे पदार्थ सिद्ध है और संख्या संख्येय पदार्थोंमें उस कालमें अभिन्न रूपसे बुद्धिगत है।

विशेषबुद्धिसे भी संख्याके गुणत्वकी असिद्धि – भेद बुद्धिकी जो बात शंकाकारने कही है कि ४ से ३ अलग बात है, ३ से ५ अलग बात है, यह भेद बुद्धि होनेसे संख्या कोई चीज है। तो वे ३–४ कहाँसे अलग हुए ? चीज अलग हुई, चीज मिली। ४ केलोंसे एक केला अलग हुआ और संख्या जो है वह पदार्थोंके आश्रय है तो १ अलग होनेसे संख्यामें भी अलगाव बुद्धि आयगी। तो विशेष बुद्धि होनेसे संख्या कोई अलग चीज है यह बात न मिली। संख्याका भेद विषय नही है, संख्येयमें भेद बुद्धि हुई। लो अब ४ केलोंमेंसे १ केला निकल गया तब ही तो ४ से भिन्न कोई ३ बात समझमें आयी। तो संख्याओंमें जो परस्पर भेद नजर आते हैं वे संख्येयके भेद से भेद नजर आते हैं। संख्या नामका कोई गुण अलग नही है। कभी ऐसा भी लगता है कि चीज कुछ नही है, हिसाब जोड़ रहे हैं, गुणा भाग कर रहे हैं। ५५ में से ७ निकाल दिए, ४८ बचे। अब बताओ वहाँ चीज क्या अलग की जा रही है ? वहाँ तो केवल संख्या ही संख्यासे मतलब है, किसी चीजसे मतलब ही नहीं। लेकिन वहाँ भी जिसको चीजोंके आश्रयसे संख्या समझनेका अभ्यास बन गया वही पुरुष तो यहाँ कागजपर संख्याकी घटा बढ़ीका हिसाब लगा रहा है। तो सामने कोई वस्तु गिननेकी नही है लेकिन गिननेका जो आश्रय है वह तो वस्तु ही है। और बचपनमें तो गोलियोंके सहारे खूब सीखा भी। अब ५ हो गए, १० हो गए आदिक। जो अभ्यास हो गया है कुछ संख्या संख्येय पदार्थके आश्रयका अभ्यास यहाँ काम दे रहा है। और इसमें भी छुपे हुए रूपसे संख्या मौजूद है जिसकी संख्या की जा रही है। किसी भी पदार्थको संख्या हो १, २, यों यों करके ५५ हुआ करते हैं। कोई करोड़ चीजें बनानी हों तो यों एक–एक दो–दो करके बनानेमें तो दिन भर लग जायगा। लेकिन बुद्धिसे कलम उठाया और तुरन्त ही करोड़ बना लिया तो इतनी जल्दी चीजोंका गिनना कैसे बनेगा ? बुद्धि है एक बात, और ऐसा अभ्यास पड़ा हुआ है संख्येय पदार्थके आश्रयसे संख्याका ज्ञान करनेका कि न भी कोई चीज हो हिसाब कदाचित लगा रहे हैं वहाँ जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संख्यामें भेद बुद्धि चल रही है वह संख्येय भेदसे भेद बुद्धि चल रही है। तो विशेष बुद्धि होनेसे भी संख्या भेद हो जाता है यह बात युक्त नहीं है किन्तु संख्येय पदार्थोंके भेद होनेसे संख्यामें भेद होता है। जहाँ गणित करते समय संख्येय पदार्थ कोई मौजूद भी नहीं है वहाँ पर उसके अभ्याससे वे संख्येय पदार्थ बने हुए हैं और उससे वह सब संख्या गणित व्यवहार किया गया है, इस तरह संख्या कोई गुण नहीं है किन्तु पदार्थ है, द्रव्य है, उनमें संख्याका आश्रय चलता है।

गुणोंमें भी संख्या गुणका व्यवहार होनेसे संख्याके गुणत्वकी असिद्धि और भी देखिये ! संख्या केवल द्रव्य द्रव्यमें ही नहीं बतायी जाती, गुणोंमें भी संख्या बतायी जाती है। इसमें बहुत गुण हैं इसमें थोड़े गुण हैं तो बताओ कि गुणमें गुण तो नहीं हुआ करते। संख्या भी गुण है और गुण भी गुण है और गुणोमें सं० लगायी जा रही. और गुणका लक्षण बताता है- निर्गुणः तो गुणकी फिर संख्या कैसे बन गयी ? गुणमें संख्या बन जाय क्योंकि संख्या बन जाय सामान्यमें संख्या बन जाय तो यह सब संख्या संख्येयमें बनाई जाती है, इसको छोड़कर अलग कुछ चीज नहीं है, उसमें ही संख्याकी बुद्धि की जाती है। संख्या नामका कोई गुण अलग नहीं है संख्या युक्तकी तभी कल्पना की जा सकती थी जब कि संख्यामें ही प्रयुक्तकी जाती होती क्यों कि गुण द्रव्यके आश्रय ही माने गये हैं। अब यह संख्या गुण आदिके भी आश्रय हो गई।

अनुमानसे भी संख्या गुणकी असिद्धि शंकाकार कहता है कि अनुमानसे संख्याकी सिद्धि हो जाती है। अनुमान यह है कि एक आदिक जो ज्ञान होते हैं वे विशेषण अथवा विषयके ग्रहणकी अपेक्षा रखकर होते हैं विशिष्ट ज्ञान होनेसे। जैसे कि डंडी पुरुष तो डंडा और पुरुषका संयोग विशेष है। उस विशेषका ज्ञान हुआ तो विशेष के ग्रहण पूर्वक हुआ है, इसी तरह १, २. ४ आदिक जो ज्ञान होते हैं वे संख्याके ग्रहणकी अपेक्षा ही तो करते हैं। उससे संख्याकी सिद्धि हो जायगी। समाधानमें कहते हैं कि इस तरह भी संख्याकी सिद्धि नहीं हो सकती। १—२ आदिक प्रत्यय, ज्ञान तो गुणोंमें भी होते हैं जैसे १ गुण, ४ गुण, बहुत गुण। तो जैसे गुणोंके सम्बन्धमें होने वाले एक आदिक प्रत्ययको संख्याके बिना मान लिया गया है इसी प्रकार घट आदिक पदार्थोंमें भी एक आदिककी बुद्धि अपने आप हो जायगी संख्या गुणका सहारा मानने की जरूरत नहीं है। जैसे गुणोंमें संख्या नहीं मानते, क्योंकि गुणोंमें संख्याको मान लेनेपर गुणोंमें गुण सिद्ध हो जाते हैं। गुण भी गुण है संख्या भी गुण है। और, गुणोंमें बन जाय संख्या तो गुणका लक्षण अघटित हो जाता है। इससे गुणोंकी संख्या नहीं मानते वैशेषिक जन, तो इसी प्रकार असहाय केवल स्वतंत्र अपना स्वभाव रखने वाले घट आदिक पदार्थोंमें भी १, २ आदिककी बुद्धि बन जायगी, फिर संख्या मानने से कोई प्रयोजन नहीं। यदि कहो कि गुणोंमें भी संख्या हो जाय तो क्या हर्ज है ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहते हैं–नहीं, गुणोंमें संख्या सम्भव नहीं है। वैसे भी और वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार इस तरह कि गुण अद्रव्य हैं द्रव्य तो नहीं है। गुण तो गुण ही है। और संख्या को द्रव्यके आश्रय माना है संख्याका आश्रय तो है कोई तो गुण गुणके आश्रय न रह सकनेसे संख्या गुणोंमें सम्भव नहीं होती, संख्या द्रव्योंमें ही सम्भव हो सकेगी वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार, सो कायदेसे तो गुणोंमें संख्या न लगना चाहिए यदि संख्याको गुण माना जाय तो मगर गुणोंमें भी संख्या लगती अवश्य है। तो जैसे एक गुण है, बहुत गुण हैं, यों गुणोंकी संख्या नहीं मानते और एकादिकी बुद्धि व्यवहार करते ही हो ऐसे ही घट आदिकमें भी संख्या गुण नहीं है और उसमें भी अपने आप बुद्धिसे, व्यवस्थासे वह सब गणनामें आ जाये।

गुणोंमें एकत्वादि उपचरितत्वकी असिद्धि—यह भी नहीं कह सकते कि गुणोंमें एकत्व आदिकका ज्ञान उपचरित मान लिया जाय अर्थात् गुणोंमें जो संख्या है १, २ आदिककी, वह उपचारसे है यह बात यों नहीं मानी जा सकती कि जैसे घट पट आदिक द्रव्योंमें संख्या बिल्कुल निर्बाध सिद्ध होती है इसी प्रकार गुणोंमें भी संख्या बराबर निर्बाध सिद्ध हो रही है, इस कारण उपचार नहीं माना जा सकता और यदि आश्रयमें रहने वाली संख्या एक अर्थमें समवाय सम्बन्ध होनेके कारण गुणोंमें उपचरित मान ली जाय तब फिर एक द्रव्यमें रूपादिक बहुत गुण हैं यह ज्ञान न बनना चाहिए, क्योंकि संख्याको तो मान लिया गया एकार्थ समवायी अर्थात् संख्या एक पदार्थमें समवाय सम्बन्धसे रहती है। अब यहाँ पदार्थ तो है एक और गुण देखे जा रहे हैं बहुत। तो संख्या जब एकार्थ समवायी मान ली तो फिर एक पदार्थमें एक संख्याका ज्ञान ही हो, क्योंकि संख्याका आश्रयभूत जो एक द्रव्य है उसमें बहुतकी संख्या नहीं है। आश्रयभूत द्रव्य तो एक है ना! जैसे कहा जाय कि पृथ्वीमें रूप, रस, गंध, स्पर्श चारों ही गुण हैं तो पृथ्वी तो एक है और सं० मानी है एकार्थसमवायिनी, तो एकार्थमें एक सं० उठे, उसमें बहुसं० न उठना चाहिए। और, भी देखो, कहे जाते हैं ६ पदार्थ तो ६ तो हुई सं० और पदार्थ हुए सं०के आश्रयभूत, पर पदार्थ तो पदार्थ भी है, गुण भी है, क्रिया सामान्य, विशेष, समवाय यों भिन्न ६ प्रकारके हैं और सं० द्रव्यमें ही लगनी चाहिये गुण कर्म आदिकमें तो सं० यों नहीं लग सकती कि सं० है गुण और गुण रहता है द्रव्यके आश्रय। बाकी ५ पदार्थ तो द्रव्य हैं नहीं, उन पदार्थोंमें ६ यह सं० का ज्ञान होनेका कारण क्या है? प्रथम तो जब सं० एकार्थ समवायी है अर्थात् एक एक द्रव्यमें ही लगती है तब फिर सं० के साथ ६ पदार्थोंका तो किसी भी जगह समवाय नहीं हो सकता। इससे सं० गुण नहीं कही जा सकती।

संख्यामें गुणत्वकी असिद्धि—कदाचित् मान लो कि सं० गुण है या सं० को मान लो कि है कुछ चीज ना सं०में गुण नाकी सिद्धि कैसे होगी? क्योंकि गुण सं० तो छहों पदार्थोंमें प्रवृत्त हुई ना! और गुण कहते हैं उसे जो द्रव्यमें रहे जैसे—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सत्त्व छहों पदार्थोंमें लगा हुआ है ! किसीमें स्वयं लगा है, किसीमें समवाय सम्बन्धसे लगा है, पर सत्त्वकी प्रवृत्ति छहों पदार्थोंमें है उसी तरहसे सं० की प्रवृत्ति भी छहों पदार्थोंमें है। १ सामान्य २ सामान्य गोत्व, मनुष्यत्व इत्यादि रूपसे सामान्यमें भी गिनती चल सकती है। विशेषोंमें तो गिनती चलती ही है, क्रियामें भी गिनती चलती है। गुणोंमें गिनती तो चला ही करती है, १० गुण, ५८ गुण आदि। तो केवल द्रव्य में ही तो सं० नहीं है अन्य पदार्थोंमें भी सं० है, इस कारणसे संख्यामें गुणपनेकी सिद्धि नहीं होती।

संख्याकी असमवायिकारणता व अनित्यताके हेतुसे संख्याको गुण सिद्ध करनेकी शंका शंकाकार कहता है कि यदि संख्या गुण न हो तब फिर संख्या में अनित्यपना और संख्याका असमवायि कारणपना नहीं बन सकता और अनित्यपना असमवायि कारणपना ये दोनों हैं अवश्य। संख्या अनित्य तो यों है कि जैसे जिस चीजकी गिनती की जा रही है वह चीज ही मिट जाय तो संख्या कहाँ विराजेगी जैसे १० कोयलें हैं और वे जल गए तो १० कहाँ रहेंगे ? और असमवायि कारणपना यों है कि १० जानने के बाद ९ जानना पहिले आवश्यक रहा, ९ जाननेके लिए ८ जानना आवश्यक रहा प्रयोजन यह है कि एकजाननेके बाद जो दो जाना जाता है तो द्वित्व संख्या जाननेका असमवायिकारण एक संख्या है। अगर एक न समझा होता तो दो कि समझ कहांसे होती ? तीन संख्या बननेके लिये २ संख्या असमवायिकारण है। तो उत्तरोत्तर संख्याकी निष्पत्ति उसके पूर्व संख्याके कारणसे होती है। तो संख्या वास्तविक पदार्थ है। और गुण है तभी तो उसमें अनित्यपने की बात और असमवायिकारणपने की बात सिद्ध होती है। आगममें भी कहा है कि एक आदि व्यवहारका जो हेतु हो उसे संख्या कहते हैं। संख्या दो प्रकारकी होती है—१ एक द्रव्य वाली और (२) अनेक द्रव्यवाली। एक द्रव्यवाली जो सं० है वह तो नित्य भी होती है और अनित्य भी होती है। जैसे जल आदिकके रूप ये नित्य हैं, जल बना है परमाणुवोंसे और जल आदिकके रूप आदिक जो गुण है वे नष्ट हो सकते हैं, पर जो आदि परमाणु है वह नित्य है। वह नष्ट नहीं होता। तो इसी प्रकार आदि परमाणु द्रव्यके सहारे रहने वाली जो एक सं० है वह सदा नित्य है और द्वयणुक कार्यके लिए पृथ्वी आदिक दृश्यमान पिण्डोंके आश्रय होने वाली जो एक आदिक संख्यायें हैं वे सब अनित्य होती हैं। तो एक द्रव्य वाली जो संख्या है वह इस प्रकार नित्य और अनित्यकी निष्पत्ति पूर्वक है। और, अनेक द्रव्य वाली संख्या वह दो आदिक है और वे परार्द्ध तक संख्यायें चलती हैं। तो उस संख्याकी निष्पत्ति अनेक विषयकी बुद्धि सहित एकत्वसे होती है द्वित्व आदिक संख्याके प्रति अपेक्षा बुद्धि कारण पड़ती है सो एकत्व संख्या असमवायि कारण बनती है।

कारणत्रयसे कार्य सिद्धिवत् संख्याकी उपपत्तिके कारणत्रयका शंका-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारका कथन—संख्याकी निष्पत्तिके लिए तीन कारणोंकी जरूरत हुई समवायि कारण, असमवायि कारण और निमित्त कारण। जैसे किसी डलियामें १२ केले रखे हैं तो उन समस्त केलोंमें जो एक संख्या विदित हुई सो १२ संख्याकी उत्पत्तिका समवायि कारण तो वे केला ही हैं स्वयं जो कि डलियामें रखे हुए हैं और असमवायि कारण १२ संख्याके लिए ११ है अर्थात् ११ संख्या बननेपर १२ संख्याकी उत्पत्ति हुई लेकिन उन केलोंको देखकर जाना कि ये १२ हैं तो अभ्यास और संस्कारमें कारण शीघ्र एक दो तीन आदिक क्रमसे बुद्धिमें संख्या आ जाती है। तो जब २ जाना तो १ संख्याका असमवायि कारण १ है। ३ जाना तो उसका असमवायि कारण २ है, इसी तरह १२ जाना तो उसका असमवायि कारण ११ है। तो उत्तर उत्तर संख्याकी निष्पत्तिमें पूर्व—पूर्व संख्या असमवायि कारण बनती चली गयी। तो समवायि कारण हुआ वह द्रव्य जिसकी संख्याकी जा रही है और असमवायि कारण हुई पूर्वकी संख्या और निमित्त कारण है अपेक्षा बुद्धि। साथ ही साथ उनमें अपेक्षा बुद्धि भी तो चल रही है। तो उत्तरोत्तर संख्याओंके जाननेके लिए पहिले जानी हुई संख्याओंकी अपेक्षा करनी पड़ी ना। तो अपेक्षा बुद्धि भी उस वक्त काम कर रही है सो अपेक्षा बुद्धि निमित्त कारण है। यों अनेक विषयक जो बुद्धि हुई उससे सहित जो एकत्व सं० है उससे अनेक द्रव्यों वाली संख्याकी उत्पत्ति हुई है। इस तरह तो असमवायि कारणपना संख्याको गुण माने बिना नहीं बन सकता। कार्य बननेमें तीन कारण हुआ करते हैं। समवायि कारण तो उपादानभूत द्रव्य है और असमवायि कारण कोई गुण पड़ता है द्रव्य नहीं पड़ता। द्रव्य तो जिसमें कार्य हुआ वह तो समवायि कारण है और जिन अन्य द्रव्योंकी अपेक्षा रखकर कार्य हुए वे सब द्रव्य निमित्त कारण होंगे। निमित्त कारण द्रव्य भी हो सकता है गुण भी हो सकता है, पर असमवायि कारण गुण होता है। तो कोई भी संख्या उत्पन्न हुई, किसीकी बुद्धिमें कोई सं० आयी तो किसी पदार्थ विषयक ही तो आयगी। जिस पदार्थमें, विषयमें आया वह पदार्थ तो हुआ समवायि कारण और जो सं० ज्ञानमें की उस संख्यासे पहिली सं० भी उसकी बुद्धिमें आई, अन्यथा उत्तर सं० न आ सकती थी। तो पहिली सं० हुई असमवायि कारण और उस में जो बुद्धि लगाई पहिलेके ज्ञानकी सुध की और उसमें फिर १ और जोड़ा, १ और जोड़ा, इस तरह उनकी बन गयी संख्या तो अपेक्षा बुद्धि निमित्त कारण हुई, इस प्रकार पहिली सं० जो असमवायि कारण बनी उससे ही यह सिद्ध है कि संख्या गुण अवश्य है। जैसे कपड़ा तैयार हुआ तो कपड़ेके समवायिकारण तो हुए सूत, क्योंकि वे ही कपड़ेके रूपमें आयेंगे। और, असमवायिकारण हुआ उन तंतुवोंका संयोग और निमित्त कारण हुए जुलाहा और उसके साधन तुरी, शलाका आदि। तो इन तीन कारणोंपूर्वक कार्यकी उत्पत्ति होती है। तो यहाँ भी जो सं० उत्पन्न हुई उसमें इसी प्रकार तीन कारण लगे, उसमेंसे इस प्रसङ्गमें यह बात कही जा रही है कि उत्तर सं० के लिये पूर्व सं० असमवायि कारण है और असमवायि कारण गुण हुआ करता है तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देखो, संख्या गुण बन गई ना !

संख्याकी अनित्यतासे संख्याके गुणत्वकी सिद्धि करनेका शङ्काकार द्वारा वर्णन अब दूसरी बातपर दृष्टि दीजिये ! संख्याका विनाश भी हो जाया करता है। तो कहीं अपेक्षाबुद्धिके विनाशसे सं० का विनाश हो जाता है और कहींपर आश्रयके विनाशसे सं०का विनाश हो जाता है। जैसे डलियामें केले रखे थे उनको गिनने लगे अथवा एक पेपरमें घनी-घनी अनेक लाइनें छपी हुई थीं, उनको गिनने लगे। गिनते समय लाइनकी अपेक्षा मिट गई। कभी इस तरह हो जाता है कि अब हम किसके बाद गिन रहे हैं, यह भूल हो जाती है तो अपेक्षाका विनाश हुआ, तो सं० भी मिट गई। अब उस पेपरकी लाइनोंकी सं० ज्ञात न हो सकी। कहीं आश्रयके विनाश से स०का विनाश होता है। सो उस जगह आश्रयका विनाश होनेपर सं०का भी विनाश होता है और अपेक्षाबुद्धिका भी विनाश होता है. जिसकी सं० की जा रही है, जब वह चीज ही न रही. मिट गई तो अपेक्षा किसमें लगाओगे और फिर गिनती भी किसमें लगाई जायगी ? तो सं०का विनाश भी देखा जाता है ऐसा अनित्यपना होनेके कारण भी सं० गुण है यह सिद्ध होता है। गुण कोई नित्य भी होता और कोई अनित्य भी होता है।

द्वयणुकादि पिण्डोंकी उत्पत्तिके लिये संख्याको असमवायित्व सिद्ध करनेका शङ्काकारका कथन—और भी देखिये! यह कैसे प्रमाण किया जा सकेगा यदि सं० को गुण न मानोगे कि यह स्कंध द्वयणुक है. यह त्र्यणुक है. यह चतुर्णुक है यह लक्षाणुक है अर्थात् यह पिण्ड इतने परिमाण वाला है, ऐसे द्वयणुक आदिक पिण्ड तो तभी बनते हैं जब पहिले उसकी सं० जानी जाय। और, सं० का जिस तरह असमवायि कारण पूर्व सं० है उसी प्रकार परिमाणपिण्ड जाननेका असमवायि कारण स. है। जैसे जाना चतुर्णुक। तो उसमें जो ४ सं० जाना उस सं० के ज्ञानका तो असमवायि कारण ३ सं० है लेकिन यह चतुर्णुक है, स परिमाणके परिचयका असमवायिकारण ४ सं० है, जिस संख्याका नाम बोला जारहा है, परमाणु पिण्डसे सम्बन्धित करके वहाँ वही सं० असमवायि कारण बनती है और जहां सं० ही प्रधान है वहां पूर्व सं० असमवायि कारण बनती है। जैसे कहा १२ केले, तो यहाँ तो सं० प्रधान हुई। तो १२ का असमवायी कारण ११ संख्या हुई। किन्तु जब कहा जायगा कि १२ मोती की माला तो १२ संख्या स्वयं असमवायि कारण बनेगी। किसके लिए ? मोती माला के ज्ञानके लिए। तो इस तरह संख्याओंमें जो असमवायी कारणपना बन रहा है उससे भी यह सिद्ध है कि संख्या गुण है। संख्याके गुणपनेका निषेध नहीं किया जा सकता।

संख्याको गुण सिद्ध करनेके शंकाकारके विकल्पोंका निराकरण—समाधानमें कहते है कि यह भी तुम्हारी केवल मनकी कल्पना मात्र है। एकत्व संख्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदिक असमवायी कारण नहीं बनता जैसे कि भेदमें असमवायि कारणपना नहीं बनता। जब कई कार्य हो रहे हैं और वे भिन्न-भिन्न कार्य हैं तो भिन्न-भिन्न कार्यको बतानेमें या भिन्न-भिन्न कार्यके होनेमें भिन्न-भिन्न कारण होते ना, ता भिन्नताका असमवायि कारण कारणभिन्नता होना चाहिए। भिन्न और अभिन्नका ही तो यहाँ सवाल चल रहा है। जैसे कुछ अभेदमें यह चतुरणुक स्कंध है उस अभेदमें तुम संख्या असमवायी कहते हो तो असमवायी कारण गुण को ही बोलता रहूं। तो वैशेषिक सिद्धान्तमें जैसे संख्या गुण है इसी प्रकार भेद भी गुण है, विभाग भी गुण है। जैसे कि संयोग गुण है। तंतुवोंका संयोग हुआ वह गुणका असमवायी कारण बना तो ऐसे ही कार्योंका निष्पादन भेदपूर्वक होता है, तो भेद भी तो गुण है। तो कार्य की भिन्नतामें कारणकी भिन्नताको असमवायी कारण स्वयं वैशेषिकोंने नहीं माना; याने किसी बड़े हालमें १० तरहकी चीजें बन रही है, कोई घड़ा बना रहा है, कोई सूत कात रहा है, कोई काठका सिलौना बना रहा है तो कोई पत्थरकी गोली बना रहा है तो कार्य भिन्नता है ना वहाँ तो कार्य भिन्नता कारण क्या है? कारण भिन्नता होना चाहिये ना. और वह होवे असमवायी कारण लेकिन ऐसा वैशेषिक सिद्धान्तमें भी स्वयं नहीं माना है। तो जैसे कार्यभिन्नतामें कारणभिन्नताको असमवायिकारण स्वयं विशेषवादमें नहीं माना है इसी प्रकार एकत्वमें भी किसी सं० आदिकको असमवायि कारण न मानना चाहिए क्योंकि एकत्व अभेद पर्यायरूप है, और अभेद व भेद परापेक्ष्य हैं। स्वात्माकी अपेक्षा और परमात्माकी अपेक्षा भेद और अभेद अवगत किए जाते हैं और ऐसा अभेद और भेद रूप आदिकमें भी हुआ करता है। जैसे रूपका रूप स्वरूपकी अपेक्षा अभेद है, परन्तु रूपका रस स्वरूपकी अपेक्षा अत्यन्त भेद है ना! तो अभेद और भेद ये स्वात्म एवं परात्मकी अपेक्षा रखने वाले होते हैं। तो इसी तरह एक और अभिन्न यह पर्याय है और इसी तरह अनेक और भिन्न यह भी पर्याय है। चाहे एक कहो या अभिन्न कहो पर्यायवाचक शब्द है, एकत्व कहो या अभेद कहो एक ही बात है, इसी तरह अनेक कहो भिन्न कहो एक ही बात है, और इस तरह द्वित्व आदिक सं० वृथा हुई। अनेकत्व पर्यायरूप हुई। तब जब द्वित्व आदिक अनेक पर्यायरूप हो गए तो सत्रूपी हो गए। अब उस अनेककी उत्पत्ति अपने कारण समूहसे होगी। फिर उसे यों कहना कि अनेक पदार्थ विषयक बुद्धिसे सहित एकत्वसे संख्याकी निष्पत्ति होती है, यह निरर्थक रहा। देखो ना अब द्वित्व आदिक स्वयं पदार्थ बन गए क्योंकि द्वित्व कहो या अनेक कहो एक ही चीज हो गई।

अनेकत्वकी अविशेषता होनेपरभी अपेक्षाबुद्धिसे संख्यामें भेद विभाग माननेकी तरह अपेक्षा बुद्धिसे द्वित्वादिके ज्ञानके विभागकी सिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि द्वित्व आदिकको अनेकत्वकी पर्याय रूपसे माननेपर सभी वस्तुवोंमें ३ हों, ४ हों, ५ हों, ६ हों, अथवा कितनी ही हों, उनमें दो तीन आदिक प्रतिभास का अटपट प्रसंग हो जायगा। जब द्वित्व आदिकको अनेकका पर्यायवाची माना, अनेक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की ही पर्याय है तो झटपट किसी भी सं० का प्रतिभास हो बैठे । २ है सो भी अनेक है, ६ है सो भी अनेक है, ५० हो सो भी अनेक है । तो फिर उसमें भिन्न-भिन्न सं० रूपसे प्रतिभास होनेका विभाग न बन सकेगा, क्योंकि अनेकपनाकी अपेक्षा तो २ से लेकर ऊपरकी सारी सं०वोंमें समानता है । समाधानमें कहते हैं कि यह दोष यों नहीं आता कि अपेक्षा बुद्धि विशेषकी तरह द्वित्वादि ज्ञान विभागकी भी सिद्धि हो जाती है तो अविशिष्टताका सं० की सिद्धिके कोई नियम नहीं रहा । जैसे कि अनेक विषयताकी अविशेषता होनेपर भी कोई अपेक्षा बुद्धि द्वित्व सं० को उत्पन्न करने वाली है और कोई अपेक्षा बुद्धि द्वित्व संख्याको उत्पन्न करने वाली हैं । वहाँ यह भी नहीं कह सकते कि अपेक्षा बुद्धिसे पहिले ही वहाँ द्वित्व आदिक सं० गुण मौजूद है क्योंकि यदि अपेक्षा बुद्धिसे पहिले बहुत्व आदिक गुण मान लिए जायें तो जो द्वित्व गुण पड़ा हुआ है पहिलेसे, उसका भी असमवायि कारणरूप अन्य द्वित्वादिक गुण बनेगा और उसका भी अन्य द्वित्व आदिक गुण असमवायी कारण बनेगा । इस तरहसे द्वित्वादिक गुणों की ही परम्परा लग बैठेगी । उसीसे ही अनवस्था बन जायगा । तो जैसे द्वित्व आदिक सं०के प्रति अनेकत्वकी कारणरूपसे अविशेषता होनेपर भी उसमें अब अपेक्षा बुद्धि विशेषसे जैसे भेद मान डालते हो, अर्थात् पदार्थोंकी अनेकता समान होनेपर भी चाहे वे कितनी ही सं०में हों फिर भी अपेक्षा बुद्धिसे यह भेद मान लेते हो यों ही अपेक्षा बुद्धिसे द्वित्व आदिके ज्ञानका विभाग ही क्यों नहीं सीधा मान लेते ? और यों अपेक्षा बुद्धिसे पहिले द्वित्व आदिक गुणकी अनर्थकता हो जायगी । वह सं० तो अपेक्षा बुद्धिसे पहिले भी विराजी हुई थी, फिर उसका ज्ञान करनेके लिए अपेक्षा बुद्धिकी आवश्यकता क्या रही ? तो अपेक्षा बुद्धिसे सं० की उत्पत्तिके निमित्त कारणकी बात बता कर जो सं० को सिद्ध कर रहे हो उसकी अपेक्षा तो यही मानना सीधा सच्चा है कि पदार्थोंको निरखकर द्वित्व आदिक ज्ञानका विभाग बन गया । जिस ही कारण अभिन्न और भिन्नत्व लक्षण वाले विशेषसे अपेक्षा बुद्धिमें विशेष आता है उस ही कारणसे अर्थात् अभिन्नता और भिन्नता रूप विशेषसे ही एकत्व आदिक व्यवहारका भेद बन जायगा । तब फिर बीचमें अपेक्षा बुद्धि विशेष नामका एक अन्य गुण लगाया, एक अर्गला दी, उससे क्या फायदा ? तात्पर्य यह है कि सं० की उत्पत्तिमें जो तीन कारण बता रहे हो समवायी कारण, असमवायी कारण और निमित्त कारण, सो उसमें असमवायी कारण भी नहीं बना और निमित्त कारण भी नहीं बना । हाँ आश्रयरूप जो है वह बाह्य पदार्थ जिसको उपयोगमें लेगा वह एक सं० बन गयी ।

संख्यामें संख्या, गुणोंमें संख्या होनेसे भी संख्याके गुणत्वकी असिद्धि जब भिन्नत्व और अभिन्नत्वरूप विशेषसे एकत्व आदिकका होना मान लिया तो गुणों में भी एकत्व आदिकका व्यवहार बहुत ही सुगमतासे कल्पित किया जा सकता है । याने गुणोंमें भी सं०का जुड़ाव हो सकता है और गणित व्यवहारमें यह बात बड़ी सुगमतया देखी ही जा रही है । कहते हैं ना कि पाँच पच्चीस याने पच्चीस पाँच बार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

(२५ × ५ = १२५) और भी देखो ! कहते हैं ना कि २६ के साथ १०० १०० अर्थात् १२६/१० और २ = १२, बच्चोंको सिखाते ना, कि १० के साथ २ और लगा दो आदिक रूपसे गणितमें भी देखा जाता है कि गुणोंमें भी सं० का व्यवहार चलता है और सं० के साथ सं० का भी संयोग किया जाता है। द्रव्य और द्रव्यत्वमें संयोग बताया गया है, मगर जोड़ क्या चीज है। जैसे जोड़का प्रश्न हुआ ५ और ६ तो उन को संयोग करके नीचे लिख देते हैं ११। सं० संख्याओंमें संयोग हो तो संयोग तो गुणोंमें नही हुआ करता, द्रव्य द्रव्यमें संयोग हुआ करना। तब सं० गुण कैसे सिद्ध हो सकेगी ?

संख्योपपत्तिकी वास्तविकता—सं० के प्रसंगमें बात सही यह बैठती है कि जो अभिन्न हो वह एक कहलाती हैं। जो अखण्ड है, निरंश है जिसमें प्रदेश और अवयव भी नही है, जिसका कोई हिस्सा न किया जाय वह सब एक। अब वह एक दूसरे भिन्नके साथ जुट जाय तो वह २ हो गया। जैसे कि अखण्ड अभिन्न एक है, उसके साथ दूसरा अभिन्न अखण्ड एक और जुड़ गया तो उसे २ कहेंगे। और वे दोनों दूसरे अभिन्नके साथ और गए तो वे ३ कहलायेंगे। इस तरहसे संख्याका संकेत लोक में प्रसिद्ध है और गणितमें प्रसिद्ध है। जो एकत्व आदिक व्यवहारका हेतु भूत हो जाता है। तो यों सं० कोई अलग चीज न रही। वह पदार्थ ही है ऐसा कि जिसके साथ मिला दिया पदार्थ तो उनमें सं० बढ़ जाती। कोई सं० नामक गुण हो और उस गुणके कारण १, २, ३ आदिक गिनती चलती हो सो बात नही है।

द्वयणुकत्वमें द्वित्व संख्याकी असमवायि कारणताकी असिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि सं० की सिद्धि इस युक्ति हो जाती है कि देखो, द्वयणुक, त्र्यणुक आदिक परिमाण वाले जो स्कंध होते हैं उन स्कंधोंके लिए द्वित्व बहुत्व सं० असमवायी कारण है। यदि द्वित्व बहुत्वकी सं० न होती तो द्वयणुक त्र्यणुक आदिक परिमाण नही बन सकता था। तो द्वयणुक आदिक परिमाणके प्रति द्वित्व त्रित्व आदि सं० असमवायी कारण थे, इस कारण सं० के सद्भावकी सिद्धि हो जाती है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात संगत नही बैठती। सं० किसीका भी असमवायी कारण नही है। द्वयणुक आदिक पिण्डका सं० असमवायी कारण बन जाय इसमें कोई प्रमाण नही मिलता। यदि कहो कि अनुमान प्रमाण तो है। वह किस प्रकार ? देखो द्वयणुक आदिक परिमाण असमवायि कारण पूर्वक है सद्रूप कार्य होनेसे। जैसे घट पट आदिक सद्रूप कार्य हैं। हो पिण्ड रूप, पदार्थरूप कार्य तो वहाँ असमवायी कारण अवश्य होता है। जैसे पटका असमवायी कारण क्या है ? तंतुवोंका संयोग। घटका असमवायी कारण क्या है ? घटके अवयवोंका संयोग। इसी प्रकार द्वयणुक परिमाण जो होता है उसका असमवायी कारण क्या है ? २ आदिक सं० २ संख्या न होती तो द्वयणुक परिमाण वाला यह पदार्थ है यह कैसे कह सकते कोई कहे कि यह कपड़ा २

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गजी है। तो २ गजीका आधार २ संख्या रहा ना। तो वह द्वित्व सं० असमवायी-कारण बन गई। यों सं० के सद्भाव ी सिद्धि होती है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात यो संगत नही होती कि कारणका परिमाण ही कार्यका असमवायीकारण सम्भव हो सकता है। जिस कारणमें जो गुण हों वे कार्य गुणके लिए असमवायी कारण ब ते हैं। मिट्टीमें जो रूप है सो घड़ा बननेपर घड़े के रूपका असमवायी कारण मिट्टी का रूप कहलायगा। कार्यभूत द्रव्यमें जो रूपादिक गुण पाये जाते हैं वहाँ असमवायी कारण समवायी कारणमें पाये जाने वाले गुण हुआ करते हैं तो इसी प्रकार द्वयणुक परिमाणमें जो परिमाणपना आया है सो कारणपरिमाण अणुपरिमाण असमवायी कारण हैं. उनका और उससे फिर द्वयणुक आदिकका परिमाण आया है।

कार्यपरिमाणका कारण कारणपरिमाण शंकाकार कहता है कि यदि द्वयणुकमें कारणपरिमाणका परिमाण आया है, परमाणु परिमाणसे अन्यपना है द्वयणुक आदिकमें तो इसका अर्थ यह होगा कि द्वयणुकमें भी परिमाणपनेका प्रसंग हो जायगा। दो परमाणु मिलकर द्वयणुक पिण्ड बना और कार्य परिमाणको आप मानते हैं कि कारण परिमाणसे वह आया करता है। तो कारण परिमाण तो एक प्रदेशी है, उससे आया कार्य परिमाण। तो द्वयणुक परिमाण बराबर हो जायगा। जैसा परमाणु का परिमाण है उसका जो स्वरूप है वही स्वरूप द्वयणुक कार्यमें आ जाना होजायगा। समाधानमें कहते हैं कि यह बात सङ्गत नही है, क्योंकि कार्य और कारणका समान ही परिणमन हुआ करेगा इसमें कोई दृष्टान्त नही है, बल्कि देखा जाता है सब जगह कि कारणके परिमाणसे अधिक ही कार्यपरिमाण होता है। जैसे अग्नि जली और उससे धुवाँ उत्पन्न हुआ तो अग्निका जो परिमाण है उस परिमाणसे विशेष ही परिमाण हुआ धुवेंमें। कार्य परिमाण कारण परिमाणसे अधिक ही देखा जाता है। एक बीज बोनेसे वृक्ष पैदा हुआ तो बीज तो छोटेसे परिमाण वाला है और वृक्ष बहुत अधिक परिमाण वाला है। तो देखो ना! कार्य परिमाण कारण परिमाणसे अधिक देखा गया है।

कर्ममें संख्याकी असमवायिकारणताकी तरह सर्वत्र संख्यामें असमवायिकारणताकी अनुपपत्ति— संख्याको असमवायिकारण माननेपर एक दोष यह भी आता है कि परिमाणकी तरह कर्ममें भी असमवायिकारणपना आ जाना चाहिए अर्थात् जैसे कार्यपरिमाणमें असमवायिकारण संख्याका हो तो किसी पत्थरको ४ आदमी मिलकर उठायें तो ४ आदमी कारण किसके हुए? उस पत्थरके उठाये जाने के तो उठाया जाना यह हुआ कर्म और वह कर्म हुआ है ४ आदमियों द्वारा उठाये रूपसे, तो उस कर्मका भी असमवायिकारण संख्या बन बैठेगी? देखा ही जा रहा है कि २, ३, ४ पुरुषोंने पत्थरको उठा लिया तो कार्य हुआ वह पत्थरका उठाना, उस उठनेरूप कार्यमें कारण पड़े वे २–४ पुरुष तो उनमें जो २–४ संख्या है वह संख्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर्मके प्रति भी असमवायि कारण बन जाना चाहिये। लेकिन कर्मके लिए संख्याको कारण वैशेषिकोंने माना है नहीं अर्थात् जो क्रिया हुई है, पत्थर उठाया गया है, उसका असमवायि कारण संख्या नहीं मानते। हाँ, यदि उसका निमित्तपना मानते हो केवल अर्थात् पाषाण जो उठाया गया है उस उठे हुए पाषाणका निमित्त है वे २, ४ पुरुष। तो उत्तरमें कहते कि निमित्तपना माननेमें किसीको भी विवाद नहीं है। पाषाण उठा, २–४ पुरुषोंके निमित्तसे उठा, तो वह बराबर निमित्त है सही बात है। और, वैसे निमित्तपनेकी बात तो सामान्य आदिकमें भी मानी गई है। हाँ, उठाने कार्यमें सं०का असमवायि कारण नहीं माना गया है। इससे सिद्ध है कि संख्या अन्य संख्याओंका भी असमवायिकारण नहीं है और द्वयणुक त्र्यणुक आदिक पिण्डोंके परिमाणका भी असमवायि कारण सं० नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर बहुत जगह दोष आयेंगे। परिमाणके प्रति सं० असमवायिकारण नहीं है, जैसे किसी क्रियामें सं० असमवायिकारण नहीं। पत्थरको उठाया तो उस अभेदरूप क्रियाका असमवायी कारण ३–४ पुरुषोंकी स० नहीं है, इसी प्रकार द्वयणुक आदिक जो स्कंध बने हैं उनके द्वयणुक परिमाणका भी असमवायिकारण सं० नहीं है तथा उत्तर सं० की भी पूर्व सं० असमवायिकारण नहीं है। जैसे ४ सं० कहा किसीने तो ४ सं० का असमवायि कारण ३ सं. को माना गया है वैशेषिक सिद्धान्तमें, वह भी युक्त नहीं बैठता. इसी प्रकार संख्या नामका कोई गुण नहीं है।

संख्याज्ञाताओंकी विशेष बुद्धिकी उपज—सं० तो जानकार पुरुषोंकी बुद्धिकी उपज है। पदार्थ तो जो जैसा अपने स्वरूपमें है वह पदार्थ उसी तरह अपने अपने स्वरूपमें मौजूद है, उनमें सं० नहीं है। सं० है, पर वह गुण नहीं। गुण द्रव्यसे अभिन्न हुआ करता है। जो लोग गुणको द्रव्यसे भिन्न मानते हैं उन्हें द्रव्यको गुणका समवाय सम्बन्ध मानना पड़ता है। और समवाय सम्बन्ध तादात्म्यकी तरह है। तो एक दृष्टिसे यही अर्थ हुआ कि गुण द्रव्यमें अभेद रूपसे रहा करते हैं। तो द्रव्य जो है जैसा वह है, उनमें जानकार पुरुष इस तरहसे सं० बनाता है कि जो है सो वह १ है ही, उसमें उपचारका सवाल नहीं। अब उस १ के साथ दूसरा १ और जोड़ा, उसका नाम २ सं० रखा। २ के साथ १ अभिन्न वस्तु और जोड़ा तो वहाँ ३ सं० की उपज हुई। जब कभी बड़ी बड़ी सं० में भी एक साथ कोई कह दी जाती है वहाँ पर भी प्रक्रिया तो यही है किन्तु उसका ज्ञान बहुत अभ्यस्त हो जानेके कारण संस्कारमें भी सब बात उतर जाती है इसलिए प्रक्रिया लगानेकी जरूरत नहीं पड़ती। प्रक्रिया वहाँ लगायी जाती है जहाँ कोई नई घटना हो और जिसका बार बार अभ्यास न हुआ हो। तो पदार्थ पदार्थके साथ सम्बन्धित हो करके सं० के आधारभूत बन जाते हैं। तो सं० के विषयमें शंकाकारने जो प्रत्यक्ष सिद्ध पनेका विशेष बुद्धिका निमित्तान्तरकी अपेक्षा का और अनुमानका प्रमाण दिया था वे सबके सब असिद्ध हो जाते हैं और सिद्ध यही होगा कि सं० है पदार्थके आश्रय। चाहे वह द्रव्य हो गुण हो, सामान्य हो, विशेष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो, कुछ भी हो उन सबमें कहने वालेके अभिप्रायके अनुसार कहने वालेके चित्तमें बुद्धि बनाकर फिर उनको साथ जोड़ जोड़कर संख्याकी उत्पत्ति कर ली जाती है संख्या नाम का कोई गुण हो अथवा द्रव्य हो ऐसी उसकी कोई सत्ता नही है। वह तो व्यवस्थाकी और समीचीन कल्पनाकी बात है। और, उस व्यवस्थासे सिद्ध हो जाता है साथ ही एक बात और है—गुण होता है द्रव्यसे अभिन्न और द्रव्य होता है उत्पाद व्यय ध्रौव्य-वान। तो संख्याकी उत्पत्ति, संख्याका विनाश और संख्याका ध्रौव्य जो कुछ नजर आता है वह द्रव्यके उत्पाद व्यय और ध्रौव्यके आधारपर आता है। इससे द्रव्यमें ही संख्याकी कल्पना है। पदार्थमें ही संख्या कल्पित की जाती है। संख्या वास्तविक गुण नही है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थके विरोधके प्रसंगमें शंकाकार द्वारा परिमाण गुणका कथन—जगतमें जो कुछ भी है वह सब सामान्यविशेषात्मक है। और, सामान्यविशेषात्मक समस्त पदार्थ ६ जातिके पाये जाते हैं जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, किन्तु विशेष वादी इस कुञ्जीसे कि बुद्धिमें जो कुछ भिन्नता जचे उसके आधारपर बुद्धि ग्राह्य तत्त्वको बिल्कुल स्वतंत्र पदार्थ मान लीजिए, विशेष वादी कहता है कि सामान्य और विशेष स्वयं ही अलग–अलग पदार्थ हैं, तब सामान्यविशेषात्मक एक सिद्ध करना युक्त नही है और इस प्रकार पदार्थ ६ यों हो गए—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। इन ६ पदार्थोंमेंसे गुण पदार्थका वर्णन चल रहा है, जिसमें छठवाँ गुण है परिमाण। पदार्थोंमें जो परिमाण पाया जाता है छोटा है, बड़ा है लम्बा है, हल्का है आदिक, उस परिमाणके व्यवहारका कारणभूत जो कुछ गुण है उसका नाम है परिमाण गुण। महान, अणु, दीर्घ, ह्रस्व, यों परिमाण ४ प्रकारके होते हैं। महान मायने बड़ा। अब वह बड़ा किसी भी ओर से चारों ओरसे कैसा ही हो, वह बड़ा कहलाता है। और अणु मायने छोटा, दीर्घ मायने लम्बा, ह्रस्व मायने छोटा यानेलम्बे रूपमें छोटा, इस तरह ४ प्रकारका परिमाण होता है।

शंकाकार द्वारा परिमाणके भेदोंका कथन—महान दो प्रकारका है, नित्य महान, अनित्य महान। जैसे आकाश, काल, दिशा, आत्मा, इनमें नित्य महत्त्व पाया जाता है। ये शाश्वत नित्य महान हैं और द्वयणुक आदिक द्रव्य अनित्य महान हैं। दो अणु मिलकर कोई स्कंध बने, अब वह स्कंध महान तो है, पर अणु बिखर जायेंगे तो महान कहाँ रहा? इसलिए इन चीजोंमें जो महत्त्व है वह अनित्य है। बेन्च बड़ी है तो ऐसा जो बेञ्चका बड़ापन है वह अनित्य है। जल जाय, कट जाय, टुकड़े हो जायें तो कहाँ महान रहा? अणु अणु होकर बिखर जाय तो कहाँ महान रहा? तो महान दो प्रकारके होते हैं एक नित्य महान और एक अनित्य महान। नित्य महान हैं जैसे दिशा, आकाश, काल, आत्मा आदिक, ये सदा परम महा परिमाण वाले हैं और ये पिण्ड स्कंध अनित्य महान हैं। अभी महान हैं, बिखर जायें तो महानपन नष्ट हो गया।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अणु भी दो प्रकारके होते हैं नित्य अणु और अनित्य अणु । नित्य छोटा याने जो कभी बड़ा हो ही नही सकता और अनित्य छोटा, जो कभी छोटा हुआ है पर उसका छोटा पन मिट जायगा । इस प्रकार अणु (छोटा) भी दो तरहके होते हैं । नित्य अणु (छोटा) और अनित्य अणु याने अनित्य छोटा परमाणु एक प्रदेशी होता है और सदा काल एक प्रदेशी रहेगा । मन भी एक अणु बराबर है और सदाकाल मन अणु बराबर ही रहेगा । ये नित्य अणुके दृष्टान्त हैं । अनित्य अणु द्वयणुकमें ही पाया जाता है । जैसे दो परमाणुवोंका मिलकर कोई स्कंध पिण्ड बना तो द्वयणुक अणु है याने अनित्य में सबसे छोटा द्वयणुक ही है । परमाणु तो नित्य अणु (छोटा) है और द्वयणुक अनित्य अणु (छोटा) होता है । ३ अणु वाला और भी अधिक अणु वाला जो स्कंध है वह अणु नही है । इसकी अपेक्षा वह महान है । अनित्य अणुवोंमें सबसे छोटा अणु कौन हो सकता है ? द्वयणुक । दो परमाणुओंके स्कंधमें जो परमाणु बना वह । तो नित्य महान कौन हुए ? आकाश, काल, दिशा, आत्मा और अनित्य महान हुए ये सब पिण्ड ।

उपचारित भी अणुत्व महत्त्वका भी व्यवहार एवं परिमाणगुणके भेदोंका उपसंहारात्मक कथन– अब कोई ऐसी शङ्का करे कि इन पिण्डोंमें भी तो यह व्यवहार देखा जाता कि यह बेञ्च छोटी है. यह बेञ्च बड़ी है । बेञ्च तो अणु नही है, चाहे कितनी ही छोटी हो, वह तो महान ही है, लेकिन उसमें भी छोटा है ऐसा तो लोग कहते हैं ? अब इसका उत्तर देते हैं कि बेर, आँवला, बेल आदिक ये सब महान हैं, लेकिन इनमें महत्ताकी प्रकर्षता देखकर किसीको अणु कह देते हैं, यह उपचरित कथन है । वास्तवमें वह छोटा नही है किन्तु बड़ी चीज सामने ला दे तो उसको छोटा कह देते हैं, यह एक उपचरित व्यवहार है । यह सब शंकाकारका ही सिद्धान्त चल रहा है । शंकाकार परिमाणको गुण मानता है । जैसे आत्मामें ज्ञान दर्शन सुख आदिक गुण हैं, पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक गुण हैं इसी प्रकार शंकाकार कहता है कि इसमें जो परिमाण बना है यह बहुत बडे परिमाणका है । यह छोटे परिमाण वाला है, यह एक दम लम्बा चला गया और यह ह्रस्व रह गया । तो शंकाकार यहाँ परिमाणका गुण कह रहा है और परिमाण ४ प्रकारके बताये जा रहे हैं–महान और अणु, दीर्घ और ह्रस्व ये चार प्रकारके परिमाण हैं और ये ४ गुण हैं, गुणके भेद हैं । गुण तो वह एक ही है परिमाण ।

महान् व दीर्घ तथा अणु व ह्रस्वमें शङ्काकार द्वारा अन्तरप्रदर्शन— अब यहाँपर शंकाकारसे कोई प्रश्न कर रहा है कि महत्त्व और दीर्घत्वमें जो कि त्र्यणुक, चतुरणुक आदि पिण्डोंमें प्रवर्तमान है याने जो ३ अणुओंसे ४ और ५, यों अनेक अणुवोंसे बने हुए हैं, उनमें प्रवर्तमान जो महत्त्व और दीर्घत्व है उनमें क्या अन्तर है और द्वयणुकमें जो व्यवहार होता है दीर्घ और ह्रस्वका, उनमें भेद क्या है ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहाँ पूछा जा रहा है कि महान और दीर्घमें और अणु और ह्रस्वमें फर्क क्या है ? क्योंकि सीधा सुननेमें ऐसा लगता कि महान कहो या दीर्घ कहो, एक ही बात है। अणु कहो या ह्रस्व कहो, एक ही बात है, किन्तु तुमने किया है ४ भेद तो इनमें फर्क क्या रहा ? महान और दीर्घमें फर्क क्या और अणु और ह्रस्वमें फर्क क्या ? तो शंकाकार उत्तर देता है कि महान और दीर्घमें फर्क है जिस फर्कको व्यवहारभेद स्पष्ट बता देता है। व्यवहारमें यह भेद पड़ा हुआ है कि महान वस्तुवोंमें दीर्घ वस्तु लावो महान पदार्थोंमें दीर्घ पदार्थ रखो और दीर्घ पदार्थमें महान पदार्थ रखो। बड़ी चीजमें लम्बी चीज लावो और लम्बी चीजमें बड़ी चीज लावो इस प्रकारका व्यवहारभेद देखा जाता है। जैसे बहुत बड़े बड़े फजली आम रखे हैं अब जिसे पसंद हैं लम्बे आम तो वह कहता है कि हमारे इन बड़े आमोंमें इन लम्बे (दशहरी) आमोंको रखियेगा। तो अब बड़ेमें और लम्बेमें फर्क हो गया ना ? जब लोग व्यवहारमें ही भेद डाल रहे हैं तो वास्तविक भेद है तभी तो व्यवहारमें भेद कहा जाता है। इसी तरह बहुतसे दसहरी आम हैं, लम्बे आम हैं और जिसको रुचि बड़े आम या फजली आम खानेकी है तो वह कहता है कि हमारे इन लम्बे (दसहरी) आमोंमें बड़े (फजली) आम रखो। तो इस प्रकार व्यवहारमें भी जब लम्बे और बड़ेका फर्क किया गया है तो यह फर्क वास्तविक अवश्य है। अब दूसरा प्रश्न है कि अणु और ह्रस्वमें क्या अन्तर है। तो चूँकि अणु द्वयणुक ही होता है, बड़े पिण्डोंको अणु नहीं कहते और परमाणु अणु होता है तब अणुमें और ह्रस्वमें क्या फर्क है यह बता सकना हम लोगोंकी बुद्धिका काम नही रहा इसे तो जो प्रत्यक्षदर्शी योगी है, सातिशय ज्ञानी हैं उनके लिए यह प्रत्यक्ष हो रहा कि अणुमें और ह्रस्वमें अन्तर क्या है। इस तरह परिमाण गुण है। परिमाणके चार भेद हैं और ये भेद देखे जाते हैं, भेद व्यवहार हो रहा है, इससे सिद्ध है कि इस भेद व्यवहारका आश्रयभूत परिणाम नामका गुण अवश्य है।

शंकाकार द्वारा अनुमाणके गुणत्वकी सिद्धि—अनुमानसे भी सिद्ध होता है कि परिमाण छोटे बड़े आदिक परिमाण रूप आदिकसे भिन्न चीज है, क्योंकि रूप आदिकका जो ज्ञान होता है उस ज्ञानसे भिन्न ज्ञान है परिमाण सम्बन्धी। इससे सिद्ध होता है कि परिमाण भिन्न गुण है। अब देखिये कि एक पुद्गल स्कंधमें रूप पाया जा रहा है ना ! और उसमें परिमाण भी पाया जा रहा, इस बेन्चमें हरा रंग है, यों रंग भी पाया जा रहा और यह ४ फिटकी बेन्च है, इस तरहका परिमाण भी पाया जा रहा। तो रूप ज्ञान हुआ एक किसी किस्मका ज्ञान और एक परिमाणका ज्ञान हुआ। इतनी लम्बी चौड़ी है, यह हुआ दूसरी किस्मका ज्ञान। इन दो ज्ञानोंमें अन्तर नही है क्या ? यदि परिमाण कोई अलग गुण न होता और यह पुद्गलकी ही चीज होती, रूप, रस गंध, स्पर्शमय पुद्गलका ही गुण परिमाण होता तो फिर रूपके ज्ञानमें और परिमाणके ज्ञानमें फर्क न रहना चाहिये था लेकिन फर्क है। जैसे कि रूप ज्ञानमें और रस ज्ञानमें अन्तर है ना ! किसी लालची भूखेको आप कोई खानेकी अच्छी चीज

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दिखा दें तो रूप ज्ञान तो उसने कर लिया, मगर वह उससे तृप्त तो न हो सका, बल्कि उससे अतृप्ति बढ़ती है, देख रहा है तो रसज्ञान करनेकी रसका स्वाद लेनेकी आकांक्षा बढ़ रही है, तो रूप और रस अगर एक होते तो आँखोंसे देखनेपर पेट भर जाता था, स्वाद भी आ जाता था, पर ये दोनों ज्ञान भिन्न–भिन्न हैं, इससे सिद्ध है कि इन ज्ञानों का जो विषय है वह भी भिन्न–भिन्न है याने रूप अलग पदार्थ है, गुण है, रस अलग गुण है। इसी तरह रूप गुणसे भिन्न परिमाण समझमें आ रहा है। इससे सिद्ध है कि परिमाण नामका गुण अलग है। बात यहाँ शंकाकार द्वारा यह कही जा रही। जैसे कि स्याद्वादी जन (जैन लोग) पुद्गलमें चार गुण मानते ना! रूप, रस, गंध, स्पर्श इसी प्रकार आत्मामें ज्ञान आदि। तो शंकाकारने कहा है कि कथित इन गुणोंके अलावा और भी अनेक गुण हैं और जैसे कि इस प्रसङ्गमें कहा जा रहा परिमाणगुण, तो यों परिमाण गुण पदार्थ है। इस प्रकार शंकाकार २४ गुणोंमेंसे परिमाणगुणकी सिद्धि कर रहा है।

परिमाणको गुणत्व सिद्ध करनेवाले शंकाकारोक्त साधनकी सदोषताका वर्णन—अब समाधानमें कहते हैं कि पहिले तो इसपर ही विचार कर लीजिए कि परिमाण गुणको सिद्ध करनेके लिए जो अनुमान बनाया है कि महत्त्व आदिक परिमाण गुण रूप आदिकसे भिन्न हैं, क्योंकि उन दोनोंके ज्ञानमें परस्पर विलक्षणता है। रूप आदिकके ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान द्वारा परिमाणका ग्रहण होता है सुख आदिक की तरह। तो यह तुम्हारा हेतु असिद्ध है। परिमाण पदार्थसे भिन्न कोई चीज नहीं है, घट पट आदिक पदार्थसे अलग महत्त्वादिक परिमाण प्रत्यक्ष परिमाण द्वारा ग्राह्य तो नही हो रहा, याने यह बेन्च यदि ४ फिटकी है तो बेन्च धरी रहे, ४ फिटका परिमाण आप उठाकर दूसरी जगह धर दें, बेन्चको वहीं पड़ी रहने दें, बेन्चका जो परिमाण है उसे जरा भिन्न करके बता दो तो परिमाण भिन्न नही किया जा सकता। वह बेन्च स्वयं उतने रूपमें फैली हुई है, इसको बताया जाता है बुद्धि द्वारा।

सर्वसिद्धान्तोंकी भेद और अभेदपर आधारितता एवं भेदाभेदात्मकताका प्रतीक—देखिये, सर्वसिद्धान्त अभेद और भेदपर आधारित हैं। जैसे न्यारे न्यारे हों और उनको अभेद बना देवे इसमें भी कुछ मत निकल आता है। चीज एक है लेकिन उसमें बुद्धिसे भिन्न–भिन्न समझ बनाकर भेद बना डालते हैं उससे भी कई मत निकले हैं। लोग एक गणेशकी मूर्ति बनाते हैं तो चूहाकी तो सवारी रखते हैं और हाथीका मुह उसमें फिट कर देते हैं तो यह क्या बना रखा है लोगोंने? समें तत्त्व था पहिले। यह एक संकेत रूप मूर्ति थी कि पदार्थ जितने होते हैं वे सब भेदाभेदात्मक होते हैं, सामान्यविशेषात्मक होते हैं। सामान्यका दूसरा नाम अभेद है, विशेषका दूसरा नाम भेद है। भेद जब देखा जाता है और भेदके देखनेमें एकान्त हठ करली जाती है तो ऐसा भेदन किया जाता है बुद्धि द्वारा कि भेद नही है फिर भी बुद्धिसे भेदकर दिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाता है। और, जब अभेदका एकान्त किया जाता तो बिल्कुल न्यारे-न्यारे पदार्थ हैं मगर उनको ऐसा एकत्वमें फिट कर दिया जाता कि उसका भेद नही जच सकता। बस इस ही की मूर्ति गणेश है। देखो! कहाँ तो आदमीका शरीर और कहाँ हाथीका मुह। कोई कल्पना कर सकता है कि ये दो गुण ऐसे एक फिट बैठ सकते हैं कि ऐसा ही मालूम हो कि सब कुछ एक ही है पूर्ण रूपसे। लेकिन ऐसे भिन्न-भिन्न पदार्थोंको अभेदमें ढाल दिया उसका प्रतीक है यह अंग, यह गणेशका प्रतीक। और, सवारी जो चूहेकी रखी है—उसमें ऐसी प्रकृति है कि कपड़े या कागजको कुतरनेके लिए डट जाय तो इतने बारीक टुकड़े कर देता है कि जितने बारीक टुकड़े आप कैंचीसे अथवा अन्य किसी औजारसे नही कर सकते। कैंची वगैरहसे आप जो टुकड़ा करेंगे वह ठोस होगा चूहे द्वारा हुये टुकड़ेमें रंच भी ठोसपना नही रहता तो भेद और अभेद दोनों स्वतंत्र वस्तु हते है इसका प्रतीक है वह गणेश। तो यह एक सिद्धान्तका संकेत था। पदार्थ सब भेदाभेदात्मक होते हैं। सामान्यविशेषात्मक होते हैं, यह एक निशान था, लेकिन यह निशान अब एक देवताके रूपमें माना जाने लगा। बात एक लोक रूढ़िकी हो गयी।

तत्त्वगर्भित घटानाओंकी कालान्तरमें रूढरूपता—ऐसी अनेक रूढ़ियाँ हो जाती है कि तत्त्व तो उसमें बसा हुआ होता है प्रायोजनिक, लेकिन उसी वस्तुको परम्परामें उनके, लड़के, उनके लड़के उसको करते गए तो तत्त्व तो छोड़ देते हैं और उसकी रूढ़िमें रह जाता है। जैसे किसी सेठके यहाँ एक पली हुई बिल्ली रहती थी। सेठके यहाँ हुआ लड़कीका विवाह तो जब फेरका समय था उस समय वह बिल्ली यहाँ वहाँ फिर जाया करे। यो अच्छे कार्यमें बिल्लीका आना जाना फिरना सकुन नही माना गया सो सेठने आडर दे दिया कि इस बिल्लीको किसी एक कमरेमें पिटारेके अन्दर बन्द कर दो ताकि यहाँ वहाँ न फिर सके। बंदकर दिया पिटारेके अन्दर। अब विवाहके बाद सेठ तो गुजर गया। बहुत दिन हो गए। अब लड़केकी लड़कीकी शादी का अवसर आया। तब तक वह बिल्ली गुजर चुकी थी। जब फेरेका समय आया तो एक लड़केने मनाकर दिया—ठहरो अभी फेरा न पड़ेगा। अभी एक नेंग बाकी रह गया है। इस समय बिल्ली पिटारेमें बन्द की जाती है तब जाकर फेरे पड़ेंगे। चले बिल्ली ढूढ़ने। बिल्ली ढूढ़ते-ढूढ़ते सबेरा हो गया। फेरेका समय भी निकल गया। जब सबेरे बिल्ली मिली, पिटारेके अन्दर उसे बन्द किया। तब जाकर फेरे पड़े। अब इसमें आप समझ लीजिए कि बिल्लीका टिपारेमें बंद करनेका उद्देश्य क्या था कि बिल्लीका उस समय इधर उधर फिरना असगुन माना जाता था, तत्त्व तो उसका यह था पर इस कार्य मात्रको देख देखकर बहुत समयके बाद तत्त्व तो भूल गए और उसे रूढ़िमें ला दिया। तो इसी तरह हमारे बहुतसे धार्मिक काम भी तत्त्वमें तो कुछ थे, पर चलते चलते उसकी एक रूढ़ि बन गई और रूढ़ि बननेके बाद इतना बाहर रूढ़िमें चले गए कि उसके तत्त्वका अनुमान भी नही किया जा सकता जैसे एक रक्षाबन्धन पर्व है, सूत बाँधते हैं भाई बहिनके अथवा कोई किसीके। अब इस सूत बाँधनेका असली तत्त्व क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है जो धर्मसे सम्बन्धित है। एक राष्ट्रीय नातेसे कुछ अर्थ लगा देना यह दूसरी बात है मगर इसके मूलमें धार्मिक तत्त्व क्या था ? धार्मिक तत्त्व यह था कि धार्मिक पुरुषोंसे निष्कपट प्रेम करना वात्सल्य करना, धर्मात्मा जनोंकी निष्कपट रक्षा करना, यह उसका मूल तत्त्व था। जैसे विष्णु कुमारने अकम्पकाचार्य आदिक ७०० मुनियोंकी रक्षा की थी। तत्काल तो वह ध्यानमें रहा, अब चूँकि उस बंधनमें रक्षा शब्द पड़ा हुआ है सो थोड़ा रक्षाका तो ख्याल रहा लेकिन उसका मूल तत्त्व उड़ गया। तत्त्व तो इतना ही रह गया कि राखी बाँधी, थोड़ी मिठाई दी और उससे चौगुना अठगुना वसूल कर लिया अनेक बातें है जो हमारे प्रयोगमें आती हैं धार्मिक, उनमें मूलमें कोई खासा तत्त्व मिला हुआ होता है सम्यक्त्व सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र आदिकका, पर रूढ़िमें आनेसे तत्त्व भूल जाते हैं तो प्रयोजन तक भेद किया जाना चाहिए पर अखण्ड वस्तुमें भी स्वतंत्र सत्ता मान ली जाय ऐसा भेद करना तो असंगत है और प्रयोजन तक अभेद करना चाहिए, किन्तु भिन्न–भिन्न पदार्थोंका तादात्म्य बन जाय ऐसा अभेद करना भी अनुचित है।

अभेदवादके एकान्तमें अभेदकी अयुक्त पराकाष्ठा—जैसे अभेद एकान्तवादियोंने ऐसा अभेद किया कि सारा विश्व एक ब्रह्म है और उस एक ब्रह्मकी ये सब पर्यायें हैं। चेतन हो अचेतन हो, कितना ही परस्पर विरोध हो, कोई दुःखी हो, कोई सुखी हो, कोई ज्ञानी हो, कोई मूढ़ हो। कैसे ही अभेद हों पर वह सब एक ब्रह्मकी पर्याय है। अब जरा आप बतलाओ कि एक चीज जो होती है वह एक ही होती है, अखण्ड ही होती है और उसमें फिर जो भी बात बनेगी वह उस पूरे एकमें बनेगी या कुछमें न बने ऐसा भी हो जायगा क्या ? उसके आधे हिस्सेमें हो आधेमें न हो यह बात नही बन सकती। जैसे एक आप आदमी हैं तो जो ज्ञान आपमें जगेगा वह आपके आत्मामें पूरे जगेगा। यह नही हो सकता कि आपके आधे आत्मामें ज्ञान हो और आधेमें ज्ञान न रहे। तो जब सारी दुनिया एक ब्रह्म है तो एक तो सुखी हो रहा और बाकी सुखी नही हो रहे यह अन्तर कहाँसे आ गया ? एकका तो यह विशेषण है नही कि एकमें आधा दुःखी रहे आधा सुखी रहे, फिर एक कहाँ रहा ? जो दुःखी हो रहा वह एक अलग है और जो सुखी हो रहा वह एक अलग है। कोई उसके भेदमें चले तो मानलो अलग चीज है, अचेतन अलग चीज है पर चेतन सारा एक है। कैसे चेतन एक हो जायगा ? जब हमारा सम्वेदन हममें है, आपका ज्ञान आपमें है, सबका परिणमन उनका अपने आपमें है तो वह एक कैसे हो जायगा ? तो प्रकट भिन्नको अभेद करना यह भी अनुचित है और अभेदको भिन्न करना यह भी अनुचित है।

विशेषवाद भेद एकान्तकी अयुक्तसीमा– विशेषवादमें यही किया जा रहा है कि है तो अभेद और उसमें भेद कर दिया, टुकड़े कर दिये। आत्मा एक है मगर उसमें ज्ञान सुख दुःख इच्छा द्वेष राग, प्रयत्न, पुण्य, पाप, संस्कार ये कुछ नजर आ रहे

http://sahjanandvarnishastra.org/

ना ! इसलिए यह कह बैठते कि जो कुछ ये नजर आ रहे सब बिल्कुल जुदे पदार्थ हैं। आत्मा बिल्कुल जुदा है और वह है गुण और आत्मा है द्रव्य। यह बात यों कहनी पड़ी कि द्रव्यमें गुणका समवाय सम्बंध बताना है। तो इसी भेद बुद्धिके साध्यसे शंकाकार इस प्रसंगमें यह कह रहा है कि पुद्गलमें जैसे रूप, रस, गंध, स्पर्श ये गुण हैं, इसी तरह इनमें परिमाण गुण भी रूप ज्ञानसे, रस ज्ञानसे जुदा है। तो रूप आदिक के ज्ञानोंसे परिमाणका ज्ञान भी जुदा है। यों परिमाणमें चीज छोटी है यह बड़ी है, यह संक्षिप्त है, यह भी गुण है ऐसा शंकाकार का कहना है लेकिन बात यहाँ यह सही नही है, जितने प्रकार प्रकारको लिए हुए जो चीज है वह वही वैसा है, उसमें गुणकी कोई बात नहीं। वह चीज है, उसको हम बुद्धि द्वारा बताते हैं कि यह इतनी लम्बी चौड़ी है। गुण सदा नित्य हुआ करते हैं। अनित्य गुण होते ही नही। पहिले तो वैशेषिकका यह कहना गलत है कि गुण नित्य भी होता है और नित्य भी होते है। जो अनित्य गुण दिख रहे हैं वे गुण नही, किन्तु गुणकी पर्याय हैं। परिणमन नित्य नही हुआ करता है। तो परिमाण यदि गुण होता तो सदा रहना चाहिए, पर बेन्चके टुकड़े हो जायें, बिखर जायें, अणु अणु बन जायें तो कहां रहा परिमाण ? इससे परिमाण कोई गुण नही है, किन्तु वह पदार्थ ही है। पदार्थसे भिन्न परिमाण नामका कोई गुण समझमें नहीं आ रहा।

गुणोंमें भी परिमाणगुणका ज्ञान होनेसे परिमाणके गुणत्वका निराकरण और भी देखिये ! जैसे एक लाइनमें बहुतसे मकान बिल्कुल पंक्तिबद्ध खड़े हुए हैं तो लोग कहते हैं कि महलकी पंक्ति कितनी बड़ी है, यह महलमाला बहुत बड़ी है। माला मायने पंक्ति, लाइन। अब बतलावो, यहाँ तीन बातें कही गई हैं—महल, माला और बड़ी। तो द्रव्य तो हुआ महल और माला हुआ गुण, महलकी माला। और, महलकी माला बड़ी है तो महलके बाद गुण और आ गया तो गुणोंमें तो गुण नही माना। महलोंकी यह माला बहुत बड़ी है। तो इसमें गुणमें गुण कैसे आ गए ? इससे मालूम होता है कि बड़ा-छोटा होना यह गुण नही है किन्तु पदार्थ जैसा है तैसा बतानेके लिए हम बुद्धिसे कल्पना करते हैं। तो आपका वह हेतु भी अनेकान्त दोषसे दूषित हो गया याने यह कहना कि बड़ा छोटा परिमाणरूप आदिक गुणोंसे जुदा है क्योंकि रूप आदिक गुणके ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान द्वारा यह परिमाण जाना जाता है। सो देखो ! कि महलकी माला बड़ी लम्बी है तो मालामें महत्ता आदिकका ज्ञान तो हो गया, लेकिन माला द्रव्य नही है, स्वयं गुण है तो गुण गुणमें तो न रहेगा इस कारण अनुमानसे यह सिद्ध करना कि पदार्थका परिमाण कोई अलग गुण हुआ करता है सो बात विरुद्ध है।

तत्त्वचर्चाका प्रयोजन भेदविज्ञान—यहाँ वस्तुका स्वरूप ही कहा जा रहा है कि इस पुद्गलमें क्या-क्या गुण पाये जाते हैं और विशेषताका पदार्थके सम्बंधमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जब ज्ञान होता है तो भेदविज्ञानसे और अधिक स्पष्टता आती है, कोई पुरुष तो ऐसा समर्थ होते हैं कि स्व और परका इतना ही भेद विज्ञान किया। जैसे किसी शिवभूति मुनिने दाल और छिलकेको भिन्न-भिन्न देखकर अपने आत्मा और शरीरको भी भिन्न भिन्न पहिचानकर आत्मकल्याण किया। तो वह उनका ऐसा संस्कार था, ऐसा अनुभव था कि भेद विज्ञान किया और आत्महित किया। लेकिन इस भरोसे नहीं बैठे रहना है कि जब शिवभूतिने स्व परका भेद ज्ञान करके आत्महित कर लिया तो हमभी कभी भेद विज्ञान करके आत्महित कर लेंगे। अरे किसी अंधे पुरुषको रास्तेमें चलते हुए किसी पत्थरकी ठोकर लग जाय और उस पत्थरको निकाल दे तो बहुत सा धन मिल जाय तो कहीं इससे यह नियम तो न बन जायगा कि जो चाहे अंधा जैसा बन जावे, आँखोंमें पट्टी बांधकर चले और किसी पत्थरमें ठोकर मारे तो उससे वह धनिक बन जाय ! अरे, धनिक बननेका उपाय तो व्यापार आदि करना है। तो इसी प्रकार भेद विज्ञानका उपाय है ज्ञानार्जन ! स्वरूप का अधिकाधिक परिचय पायें, भीतरी बात जितना देख सकें उतना निरखते जायें। जितना विशिष्ट ज्ञान होगा उतना ही भेदविज्ञानमें स्पष्टता आयगी और उतना ही अपने अभेदस्वरूप आत्मतत्त्वकी ओर आ सकेंगे। इसी उद्देश्यको लेकर वस्तुस्वरूपकी ये सब ज्ञानकी चर्चायें चल रही हैं।

गुणमें गुणाश्रयता आदिका प्रसङ्ग होनेसे परिमाणके गुणत्वकी असिद्धि

महत् आदिक परिमाण गुण हैं क्योंकि उनका प्रत्यय देखा जा रहा है, ऐसा कहनेमें यह दोष है कि जब यह कहा जाता है कि मकानकी पंक्तियाँ बड़ी लम्बी चौड़ी हैं तो अब गुणमें तो गुण रहते नहीं, मकानकी पंक्तियाँ स्वय गुण हैं और उन पंक्तियोंमें महान दीर्घपनाका व्यवहार देखा जा रहा है तो यह तो सिद्धान्तसे गलत है। गुणमें गुण तो रहा ही नहीं करते। यदि कहो कि जिस ही महल आदिकमें माला नामका गुण समवेत है अर्थात् मकानमें ही तो कहा जा रहा है मकानकी माला और महत्व भी बताया जा रहा है उस होमें तो उसका भी समवाय है। माला और महत्त्वादिक इनका एक मकान अर्थमें समवाय सम्बन्ध है इस कारण 'महती प्रासाद माला' यह ज्ञान बन जाता है और इस तरह अनैकान्तिक दोष भी नहीं आता। समाधानमें कहते कि इस तरह तो अपने ही सिद्धान्तसे विरोध होता है। पहिली बात तो यह है कि गुणोंमें गुणका सद्भाव माना नहीं गया और यहां प्रासादमालामें महत्त्वका गुण थोपा जा रहा है, दूसरी बात यह है कि मकान वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार अवयवी द्रव्य नहीं है अर्थात् एक पदार्थ नहीं है एक अवयवी द्रव्य बनता है सजातीय अवयवोंके सम्बन्धसे, पर मकानमें काठ भी लगा है, लोहा, ईंट पत्थर आदि कितने ही विजातीय पदार्थ लगे हुए हैं तो विजातीयोंका संयोग मात्र रहा। विजातीय स्कंध द्रव्यके आरम्भक नहीं बन सकते अवयवी द्रव्य बनेगा, तो सजातीय अवयवोंसे बनेगा। जैसे एक कपड़ा बना तो सजातीय तंतुओंसे बनेगा, इस तरहसे मकान कहाँ सजातीय अवयवोंसे बनता है ? वह तो अनेक विजातीय स्कंधोंका संयोग मात्र है और ऐसा माना भी है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वैशेषिकोंने कि मकान एक संयोगात्मक गुण है याने काठ, ईंट, पत्थर, लोहा आदिक पदार्थोंका जो संयोग है उस ही संयोगका नाम मकान है। तो मकान क्या हो गया गुण हो गया और गुणमें गुण रहता नही तो गुणमें परिमाण कहाँ आयगा ? पहिले तो यह ही कहना गलत है कि मकान बड़ा है, क्योंकि मकान स्वयं द्रव्य नही है। वह तो अनेक विजातीय पिण्डोंका संयोग है, सो मकान गुण स्वरूप हुआ अब गुणमें महान है यह ऐसा महत्त्वका गुण कैसे आया ? और, फिर माला नामका गुण तो मकानमें रह ही नही सकता, क्योंकि गुणोंमें गुण नही रहा करते। मकान संयोग गुण है, उसमें माला नामका गुण नही रह सकता। तो प्रासाद माला है यही ज्ञान पहिले अयुक्त है। मकानका माला तो माला गुण है और मकान भी गुण है। गुणमें गुण रहता नही अतएव प्रथम शब्द ही गलत है। फिर उसमें यह बात कहना कि प्रासाद माला महती है, छोटी है यह तो बात दूर ही रही, इस ज्ञानका अवकाश ही कहाँ ? तब पहिले प्रासाद माला है यह ही सिद्ध नही हो पा रहा। देखो ! वैशेषिक सिद्धान्त का भी यही कारण है कि माला तो है संख्या रूपसे, अर्थात् जहाँ बहुत मकान दिखें उसका नाम माला रखा गया तो माला किसका नाम पड़ा ? बहुत मकानोंका नाम। और बहुत है संख्या तो माला तो संख्याका रूप है। तो माला गुण हो गया ना, और प्रासाद याने मकान संयोगरूपसे है। अनेक विजातीय स्कंधोंके संयोगसे महल तैयार हुआ है तो मकान भी गुणरूप हो गया, और महत आदिक परिमाण रूपसे है। महत परिमाण है इसका तो यह प्रकरण ही चल रहा है। तो अब देखिये कि ये तीनोंके तीनों ही चीजें गुणरूप हो गयी। मकान भी गुणरूप, मकानकी पंक्ति भी गुणरूप और मकानकी पंक्ति मकान है तो यह महत्त्व भी गुणरूप है। अब तीन गुणोंका आधार आधेय भाव बनाया जा रहा है तो यह कहाँ तक युक्त है ?

मालाकी द्रव्यस्वभावताकी अनुपपत्ति - यदि शंकाकार कहे कि मालाको हम द्रव्यका स्वभाव मान लेंगे, माला महान है तो महान तो गुण है ही, वह तो परिमाणका अंग है लेकिन मालामें हम महत्त्व थाप रहे हैं तो मालाको हम द्रव्य स्वभावी कह देंगे। माला द्रव्यरूप है, फिर तो मालामें महत्त्व रह जायगा, द्रव्यमें गुण तो रहा ही करता है। इसका उत्तर यह है कि मालाको द्रव्यस्वभावी मान लेनेपर भी अर्थ यह हुआ कि द्रव्य द्रव्यके आश्रय हो गया। माला हो गया द्रव्य स्वभाव और मकान को मान ही रहे द्रव्य स्वभाव तो द्रव्य द्रव्यके आश्रय हो गए। अथवा मालाको तो मान लिया द्रव्य स्वभाव और मकान है संयोगात्मक गुणरूप तो द्रव्य गुणके आश्रय कभी माने ही नही गए। द्रव्य द्रव्यके सहारे संयोगरूपसे रहेगा या निराश्रय रहेगा। तो मालाको भी जब द्रव्यरूप मान लियो तो प्रासाद गुणरूप नही रह सकते। फिर यह कहना कि प्रासाद तो संयोग स्वरूप है, अर्थात् विजातीय अनेक स्कंधोंका संयोग गुण मिल करके यह प्रासाद बना है तो फिर मालाका संयोग स्वरूप प्रासादके आश्रय कहना नही बन सकेगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मालाकी जाति स्वभावताकी अनुपपत्ति—शंकाकार कहता है कि तब फिर मालाको जाति स्वभावी मान लो। जाति तो संयोगमें भी रह सकती, द्रव्यमें भी रह सकती. गुणोंमें भी रह सकती। तो जाति स्वभाव मान लेनेसे फिर तो ये सब आपत्तियाँ दूर हो जायेंगी। उत्तरमें कहते हैं कि यदि मालाको जाति स्वभाव मान लिया जाय तो जाति रहती है प्रत्येक आश्रयमें। जैसे मनुष्यकी जाति है मनुष्यत्व यदि १०० मनुष्य हैं तो प्रत्येक मनुष्यमें मनुष्यत्व रहा कि नहीं ? जातिका स्वरूप ही ऐसा है कि प्रत्येकमें रहता है और समूहमें रहता है। तो जाति प्रत्येक आश्रयमें समवेत होनेके कारण फिर एक ही महलमें माला है ऐसा ज्ञान बन जाना चाहिए। जैसे कि मनुष्यत्व जाति है तो एक ही मनुष्यमें मनुष्यत्व है ऐसा ज्ञान बराबर चलता है और सैंकड़ों मनुष्य बैठे हों तो उन सभी मनुष्योंमें मनुष्यत्व है यह भी ज्ञान चलता है। माला जाति रूप हो गयी और माला है मकानकी तो एक एक माला है इस प्रकारका ज्ञान बनना चाहिए और, फिर यह कहना कि एक प्रासाद माला बड़ी है, दीर्घ है अथवा छोटी है ये सब ज्ञान फिर न रहना चाहिए, क्योंकि माला तो एक जातिरूप हुई। और वह एक मकानमें भी माला बन गई तब फिर महती माला. छोटी माला यह व्यवहार कैसे होगा ? हाँ मकानमें तो यह व्यवहार कर सकते कि छोटा मकान, बड़ा मकान, पर माला जातिमें छोटा बड़ा आदिक ज्ञान नहीं किया जा सकता है। और, फिर मालामें और मालाके आश्रयभूत मकान आदिकमें एकत्व द्वित्व आदिक गुण सम्भव ही न हो सकेंगे। क्योंकि माला भी गुण बन गया, मकान भी गुण बन गया और एकत्व द्वित्व आदिक संख्या तो गुण है ही। तो गुणमें गुण कैसे सम्भव हो सकेंगे ? साथ ही साथ एक यह भी दोष है कि जहाँ बहुत सी प्रासाद मालायें हैं, जैसे मान लो १० लाइनोंमें ५०–५० मकान बने हुए हैं तो मालायें १० हो गयी ना। अब उन १० प्रासाद मालावोंमें माला माला इस प्रकारके जो अनुगत प्रत्ययकी उत्पत्ति होती है फिर वह न हो सकेगी। जैसे मनुष्य मनुष्य अनेक हैं और उनमें मनुष्यत्व मनुष्यत्व ऐसे अनुगत ज्ञानोंकी उत्पत्ति होती है इसी प्रकार बहुत सी प्रासाद मालावोंमें यह माला है, माला है, इस प्रकार अनुगत प्रत्ययकी उत्पत्ति हुआ करती है लेकिन माला को जाति और गुण मान लेनेपर फिर उसमें अन्य अन्य जाति नहीं लादी जा सकती। एक जातिमें अपर अपर (अन्य अन्य) अनेक जातियाँ नहीं बनायी जा सकती। जाति में तो एक जाति है अन्यथा मनुष्यमें मनुष्यत्व है ना तो कोई मनुष्यत्वमें भी एक जाति थोप दे, मनुष्यत्वमें मनुष्यत्व है तो जातिमें अन्य जाति नहीं लगा करती। जब माला खुद जाति कह दी गयी तो जहाँ बहुत सी मालायें हैं फिर उनमें माला माला इस प्रकार जाति रूपसे अनुगत ज्ञान न बन सकेगा और अनुगत ज्ञान होता सो है ही।

कल्पित माला जातिमें माला जातिके बोधकी औपचारिताका निवारण
ऐसा भी नहीं कह सकते कि बहुतसी मालावोंमें जो माला माला इस प्रकारका अनुगत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान होता है सो वह अनुगत बोध औपचारिक है, मुख्य नहीं। यह बात यों नहीं कह सकते कि जैसे मुख्यमें जातिका (अनुगत रूपका) ज्ञान होता रहता है इसी प्रकार इन मालावोंमें माला माला इस प्रकारका अनुगत ज्ञान बराबर निर्बाध हो रहा है, जैसे कि मुख्य वस्तुमें ज्ञान होता है। सो मुख्य जो ज्ञान होता है उस हीकी तरह जो जो ज्ञान हों उन्हें औपचारिक तो नहीं कहा जा सकता। जैसे खंडी मुण्डी आदिक अनेक गायें हैं उन गायोंमें गौ गौ इस प्रकारका जो ज्ञान हो रहा है वह मुख्य ज्ञान है और उसीकी तरह ही इन मालावोंमें माला माला इस प्रकारका ज्ञान हो रहा है वह भी निर्बाध हो रहा है तो मुख्य ज्ञानके समान जितने भी ज्ञान हैं उन्हें औपचारिक नहीं कहा जा सकता। यदि मुख्य ज्ञानके समान हुए ज्ञानोंको औपचारिक कह दिया जाय तो इसमें बड़ी विड़म्बना होगी। फिर तो कोई कह बैठेगा कि यह मुख्य ज्ञान औपचारिक है। खण्ड-खण्ड ज्ञानमें गौ-गौ इस प्रकारका जो अनुगत ज्ञान हो रहा है वह भी औपचारिक है, यों कह दिया जायगा। इस कारण परिमाणके सम्बन्धमें तो यह सीधीसी बात मान लेनी चाहिए कि जो अपने कारण समूहसे मकान आदिक महत आदिक रूपसे जो कि उत्पन्न हुआ है, अवस्थित है वह भी महान आदिक प्रत्ययके गोचर होता है अर्थात् यह बड़ा है ऐसे ज्ञानका विषयभूत क्या है ? ये ही स्वयं महान आदिक, जिसमें बड़ेपनका हम ज्ञान कर रहे हैं न कि यह बड़ा है इस प्रकारके ज्ञानका विषय कोई परिमाण नामका गुण है, ऐसे ही घट पट आदिक समस्त पदार्थ नजर आ रहे हैं। इन ही पदार्थोंमें बुद्धिसे सोच जानकर यह महान है, ह्रस्व है, दीर्घ है आदिक ज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है। इससे इन पदार्थोंसे भिन्न कोई परिमाणनामक गुणकी कल्पना करना व्यर्थ है।

अनुत्तीर्ण पदार्थोंमें महत् अणुके औपचारिक कथनकी मीमांसा— शंकाकारने यह भी कहा था कि बेर, आमला आदिकमें अणुका व्यवहार होना औपचारिक है याने द्वयणुक स्कंध तो अणु है, उससे अधिक अणु वाले स्कंध पिण्ड वे सब महान कहलाते हैं, तो बेर, आँवला आदिकमें तो असंख्य अणु हैं। वे तो महान ही हैं, फिर भी उनमें जो यह व्यवहार देखा जाता कि बेल तो बड़ा है, आंवला छोटा है, बेर और छोटा होता है, इस प्रकार जो इन महान पदार्थोंमें अणुका व्यवहार देखा जाता है वह सब औपचारिक है। शंकाकारका कहना यह कथन मात्र है, क्योंकि परिमाणके सम्बन्धमें मुख्य और गौणका विभाग करना अप्रमाणभूत है जैसे कि सिंह और बालक में, जैसे बालकका नाम सिंह रख दिया तो उन दोनोंमें मुख्य और गौणका विवेक करना सब लोगोंको विवादरहित है। जो जङ्गलका सिंह है वह मुख्य सिंह है और शहरमें रहने वाले पुरुषका जो बच्चा है जिसमें कुछ क्रूरता सी हो इस कारण सिंह नाम रख दिया अथवा निक्षेपसे सिंह नाम रख दिया तो इन दोनोंमें सिंह तो मुख्य है और बालक सिंह गौण है ऐसा जो ज्ञान बनता है वह बिल्कुल विवादरहित बनता है। उस प्रकारसे ऐसा ज्ञान किसीको भी नहीं होता। द्वयणुकमें तो अणु और ह्रस्वपना मुख्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है और बेर, आँवला आदिकमें अणु और ह्रस्वपन औपचारिक है इस प्रकारका किसी को ज्ञान नही चलता। केवल कथनमात्रसे कोई बात लादनेकी पद्धति तो सब शास्त्रोंमें सुलभ है। अनेक मत हैं, अनेक शास्त्र हैं, सब अपने-अपने दिमागसे बनाये गए, उनज से कथनमात्रको लादते ही हैं। तो यह कहना भी उपयुक्त न रहा कि बेर आँवला आदिकमें जो अणु आदिकका व्यवहार होता है वह औपचारिक है। पदार्थ है और पदार्थको निरखकर ही अपने प्रयोजनवश अणु ह्रस्व आदिकका व्यवहार होता है। परिमाण नामका कोई गुण न रहा।

आपेक्षिक होनेसे परिमाणके गुणत्वका निराकरण—परिमाण इस कारण भी गुण नही है कि वह आपेक्षिक है। गुण कभी आपेक्षिक नही होता है। जो है सो है। कोई कभी निरख ले, पर परिमाण यह बड़ा है, यह छोटा है यह सब आपेक्षिक है, अपेक्षाओंसे उत्पन्न हुआ है। जैसे बीचकी अंगुलीकी अपेक्षा अनामिका अंगुली छोटी है तो यह आपेक्षिक व्यवहार हो गया। रूप सुख आदिक भी तो गुण हैं, उनमें अपेक्षा व्यवहार तो नही सिद्ध होता। रूप है सो है ही है, पर छोटा बड़ा होना यह तो आपेक्षिक चीज है और गुणोंमें आपेक्षिकता होती नही। शंकाकार कहता है कि जहाँ यह प्रयोग होता कि यह नील है, यह नीलतर है, याने यह साधारण नील है, यह विशिष्ट नील है तो देखो! नील रूप है ना और रूपमें आपेक्षिकता आ गयी, जिसको हम विशिष्ट नील कहते हैं वह साधारण नीलकी अपेक्षासे ही तो विशिष्ट है, इसी तरह सुखमें भी कहा करते हैं कि यह सुख है यह सुखतर है। यह उससे ऊँचा सुख है। तो सुखमें भी आपेक्षिकता आती है। तो यह कथन तो युक्त न रहा कि गुणों में आपेक्षिकता नही हुआ करती सो परिमाणमें अपेक्षा है, इस कारण परिमाण गुण नही है। उत्तरमें कहते हैं कि नील नीलतर सुख सुखतर आदिकका जो आपेक्षिक व्यवहार है सो नील और सुखके प्रकर्ष और अप्रकर्षके कारण है। नीलसे अधिक नील बन गया तो उसकी तरंतमतासे यह आपेक्षिक व्यवहार है. पर गुणके कारणसे आपेक्षिक व्यवहार नही है, किन्तु परिमाणमें यह छोटा है यह बड़ा है यह सदा आपेक्षिक व्यवहार रहा करता है, तो आपेक्षिक (अपेक्ष जनित) व्यवहार होनेके कारण परिमाणको गुण नही कह सकते हो।

आपेक्षिकता होनेसे परिमाणके गुणत्वका अभाव—विशेषवादमें परिमाण को गुण कहा है। कोई वस्तु ४ फिट लम्बी है अथवा महान है आदिक जो परिमाण नजर आते हैं इनको भी गुण बताया है, लेकिन ये गुण नही हैं सीधी सी बात है—गुण कभी आपेक्षक नहीं होते, जिसमें जो है सो है। दूसरा हो तब यह गुण है ऐसी अपेक्षा नही रहती। पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं तो हैं वे, आत्मामें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख आदिक गुण हैं, ठीक है, इनमें किसी अन्यकी अपेक्षा नही रही, लेकिन अणु महान ऐसा बतानेमें अन्य द्रव्यकी अपेक्षा है। एक ऐसा वृत्तान्त है कि एक राजाने एक चार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अंगुलको सींक रख दी और लोगोंसे कहा कि इसको तोड़ो मत और छोटी करदो। सभी लोग बड़ी हैरानीमें आये कि यह सींक तोड़े बिना छोटी कैसे हो सकती है ? तो उनमें एक बुद्धिमान मन्त्री था, उसने झट उसी तरहकी ६ अंगुलकी लम्बी सींक उसके पास लाकर रख दी और कहा— अब देखिये महाराज ! यह सींक छोटी हो गयी या नहीं ? तो सभी लोग बोल उठे हाँ, छोटी हो गई ! तो छोटी-बड़ी यह अपेक्षित चीज है और जो अपेक्षित है वह गुण नहीं हो सकता। गुण तो पदार्थकी एक शाश्वत शक्ति है, उसमें अपेक्षाकी क्या बात ? इसी तरह ह्रस्व दीर्घपना भी गुण नहीं हो सकता। कोई चीज ह्रस्व है, कम लम्बी है तो वह वस्तु जैसी अपनी संस्थानमें है बस उस ही संस्थानका नाम तो ह्रस्वपना है। कोई दीर्घ संस्थान वाली हो तो उस हीका नाम दीर्घपन है। वस्तुके आधारविशेषसे अतिरिक्त लम्बा, कम लम्बा ये कुछ कहलाते हों तो बताओ ? जैसे यह चीज १ फुट लम्बी है वह तो वहीं धरी रहने दो और वह लम्बापन अलग निकालकर बता दो, या किसी तरह अनाश्रय लम्बापन दिखा दीजिये क्या आप दिखा सकेंगे ? नहीं दिखा सकते। तो यह परिमाण कोई गुण नहीं है। यदि उस लम्बेपनको, ह्रस्वपनको वस्तुके आकारसे भिन्न बताओगे वह तो भिन्न चीज है, किसी भी तरह भिन्न बताओ और तब फिर ४ ही भेद परिमाणके क्यों कहते— अणु, महान, ह्रस्व दीर्घ आदिक ? फिर तो उसमें अनेक और जोड़ दीजिये ! गोल, त्रिकोण, चौरस आदिक। तो ४ ही परिमाणके भेद हैं यह संख्या तो न बनी ! इससे सिद्ध है कि परिमाण कोई गुण नहीं है।

तत्त्वमीमांसाका प्रयोजन आत्महितके उपायका अन्वेषण—ये चर्चायें यद्यपि विस्तारमें जाकर रूखी पड़ जाती हैं किन्तु इन चर्चावोंका जब मूल समझेंगे कि ये निकली क्यों हैं ? तो विदित होगा कि इनका जो मूल ध्येय है उससे आत्महितका अधिक सम्बन्ध है। ये सब चर्चायें इस बातपर निकलीं कि ज्ञानका विषय सामान्य-विशेषात्मक होता है। हम ज्ञानके द्वारा जो भी पदार्थ जानेंगे वह पदार्थ सामान्य-विशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है, भेदाभेदात्मक है। यह निरूपण तो समस्त ज्ञानों का मूल आधार है। लोग मोह मिटानेके लिए बड़े-बड़े आश्रय लेते हैं और मोह नहीं मिटता। जीवोंको यदि कोई दु:ख है तो केवल मोहका दु:ख है, दूसरा और कोई दु:ख नहीं, सभी मोहसे दु:खी हैं, किसीका कुछ नहीं। प्रत्येक आत्मा केवल स्वरूपसत्त्व मात्र है। किसी भी आत्माका अपने स्वरूपसे बाहर कुछ भी तो नहीं है, लेकिन जीव की दृष्टि, जीवका उपयोग बाहरकी ओर ऐसा वेगपूर्वक दौड़ा है कि इसे यह सुध भूल गई कि मैं तो केवल अपने स्वरूपमात्र हूँ, इससे बाहर मेरा कहीं कुछ नहीं और, देखिये जब मेरेसे बाहर मेरा कहीं कुछ नहीं तो मेरा आनन्द, मेरी शान्ति, मेरा सुख किसी बाहरी दृष्टिके उपायसे प्राप्त हो सकता है क्या ? कभी नहीं प्राप्त हो सकता। लेकिन मोहमें इतना ज्ञान किसे धरा है ? मोही जीव तो यह मानते हैं कि मेरे पास इतना वैभव हो तो सुख मिले, मेरी ऐसी कीर्ति छा जाय तो मुझे शान्ति मिले, पर न उतना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वैभव मिल पाता, न उतनी ीति छा पाती। न मन चाही बात होती तो बड़ी हैरानी अनुभव करते हैं हाय मुझे बड़ा कष्ट है। सुनने वाले लोग भी मोही हैं सो वे भी सहानुभूति प्रकट करते हैं–हाँ भाई कष्ट तो ज्यादह है। कोई ज्ञानी विवेकी हो तो वह उस मोही पुरुषकी हँसी करे। अरे कहाँ है कष्ट ? तू तो अपने स्वरूप मात्र है। न लखपती करोड़ पति बन सका तो इससे तेरा क्या बिगड़ गया ? तेरा धर्म तो सम्यक्त्व, ज्ञान व चरित्र है, इनमें यदि बाधा आये तो तेरा सब कुछ खो गया। बाहरमें कमी बेसी रही तो उससे क्या है ? वे तो सब तेरेसे प्रथक् हैं। तेरा तो तेरे आत्मस्वरूपसे अतिरिक्त यहाँ अन्य कुछ है नही लेकिन इसमें मोही जीव आ कहाँ पाते हैं ? बाहर वे डोलते हैं और व्यर्थ हैरानी सहते हैं। तो हैरानीका मूल मोह है दूसरा कुछ नही। जब जब हैरानी बढ़ रही हो तब तब आँखें मींचकर दृष्टि बन्द करके भीतर ही भीतर अपने आपको निरखलो कि मैं यह हूं मेरी दुनिया इतनी है, मेरेमें मेरा परिणमन होता है, बस यही मेरा सर्वस्व है, यही मेरी प्रक्रिया है। इससे बाहर तो हमारा कुछ है हो नही। लोग तो इस मेरेका परिचय कर भी नही रहे हैं, हैरानी क्या ? बड़े बड़े पुरुष एक सेकेण्डमें ही ६ खण्डके वैभवको छोड़ देते हैं। ज्ञानी पुरुषोंने अरबोंके साम्राज्यको एक साथ छोड़ दिया और तुम्हारा कुछ धन गिर गया, या किसी तरह कम हो गया तो तुम्हारा उन ज्ञानी पुरुषोंसे अधिक टोटा पड़ गया क्या ? यों समझलो। और, जिन्होंने अरबोंका साम्राज्य छोटा उन्होंने सब कुछ पाया। जो पानेकी चीज थी सो पायी, जो न पानेकी चीज थी उससे मोह छोड़ा, यह अन्तर आया। और, यहाँ मोही जगतमें जो पानेकी चीज है उसकी सुध ही नही और जो न पानेकी चीज है वही उपयोगमें रात दिन बस रहा है। उससे बात क्या हुई ? वासना बिगड़ रही है, मलिन हो रहे हैं, दुःखी हो रहे हैं। तो जिस मोहसे हम दुःखी हुआ करते हैं उस मोहके मेटनेका उपाय क्या है? इसपर तो दृष्टि दो।

दृढ यथार्थ वैराग्यकी नीव मौलिक विज्ञान— ऊपरी बातोंसे काम न चलेगा। यह दुनिया ईश्वरका बगीचा है, तुम्हारा इसमें क्या रखा है ? मोह न करो, इन गप्पोंसे काम न चलेगा। या किसीको मरा हुआ देखकर यह कह उठना कि अरे, यहाँ किसीका कुछ नही है, जीव अकेला आता है, अकेला जाता है, न साथमें कुछ लाता है, न साथ कुछ ले जाता है, सब कुछ यहींका यहीं पड़ा रह जाता है। इन गप्पोंसे भी काम न चलेगा, किन्तु जब एक–एक पदार्थका, अणु–अणुका, प्रत्येक आत्माका यह स्वरूप देखेंगे कि प्रत्येक पदार्थ अपने–अपने स्वरूपमें रह रहा है, मरो जियो, इसकी कुछ बात नही है। जी रहे हैं वहाँ भी दुःख, मर कर गए वहाँ भी दुःख, दिखता सब जगह यही है कि प्रत्येक पदार्थ अपने–अपने स्वरूपमें ही है। किसी पदार्थका किसी अन्यमें कुछ गया नही है। यह बात तब ही तो दीखेगी जब पदार्थका स्वरूप भी दृष्टिमें हो। उसीका यह सब प्रसङ्ग है कि प्रत्येक पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होता है। कुछ धर्म, गुण तो ऐसे हैं जो परस्पर एक दूसरेसे मिलते–जुलते हैं। तो जो पर-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्पर एक दूसरेसे मिलते-जुलते हैं उन धर्मोंके कारण अर्थक्रिया नही होती, काम नही होता। जो गुण दूसरोंसे मिलते-जुलते नही, अपनी ही अपनी व्यक्तिमें रह रहे हैं ऐसे असाधारण गुणसे अर्थक्रिया होती है, लेकिन उन असाधारण गुणोंकी रक्षा साधारण गुणोंसे हो रही है। आत्मामें ज्ञान गुण है, असाधारण गुण है, अन्य पदार्थोंमें नही पाये जाते। लेकिन ज्ञान है यह तो मान लेवों और ज्ञान अस्तित्वसहित है। ज्ञान अपने स्वरूपसे है, परस्वरूपसे नही, ज्ञान निरंतर परिणमता रहता है। ज्ञान अपनेमें ही परिणमता दूसरेमें नही परिणमता ऐसी साधारण बातें यदि असाधारण गुण वाले अर्थमें न जुटी हों तो केवल असाधारण गुणसे ही क्या काम चलेगा ? तो यों पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं। इसी दृष्टिसे हमारा मोह दूर होगा जड़से मोह दूर होने की प्रक्रिया यही है। पदार्थोंका स्वरूप यथार्थ जाने बिना जो वैराग्य, त्याग, व्रत आदिक हैं वे सब भावुकताके फल हैं। दिल भर आया तो वैराग्य हो गया। वह मूलसे ज्ञान पूर्वक वैराग्य नही है। मौलिक वैराग्य जिसके होता है कर्मोदयवश कभी वह फिसल भी जाता है लेकिन उसका फिसलाव लम्बा नही हो सकता। वह तुरन्त चेत जाता है, वह भावुकताका वैराग्य नही है। भावुकताके वैराग्य वाले कभी अपने वैराग्य प्रदर्शन में या व्रत नियम आदिके साधनमें बहुत तेज भी कदम बढ़ालें किन्तु भीतर उन्हें आत्मीय विशुद्ध निर्दोष आनन्दकी प्राप्ति नही होती। तो हित है वैराग्यमें और वैराग्य का मूल है सम्यग्ज्ञान और सम्यग्ज्ञान वहीं है जहाँ वस्तुका मौलिक अन्त: परिचय प्राप्त हो जाय। तो यों सामान्यविशेषात्मक पदार्थके परिचयकी बात चल रही है।

भेदाभेदविपर्ययसे मूल प्रयोजनमें बाधा—तो दार्शनिक अपने अपने विचारके जुदे-जुदे हुआ करते हैं। विशेषवादी दार्शनिकने यह बात रखी कि सामान्य-विशेष स्वयं जब पदार्थ है तो पदार्थको सामान्यविशेषात्मक कहना कैसे युक्त है ? वह सामान्यविशेष द्रव्य गुण कर्म वाले पिण्डमें लगा करता है। ये द्रव्य गुण कर्म भी जुदे जुदे पदार्थ हैं। देख लीजिए ! चीज एक है, उस एक ही चीजको ६ खण्डोंमें बाँट देना यह बुद्धि भेदका कितना जबरदस्त एकान्त है। इस विशेषवादकी झलक कभी कभी वैज्ञानिकोंमें भी आ जाती है। वे अपने प्रयोगमें शक्तिको पिण्डसे जुदा निरखते हैं और यह सुध भूल जाते हैं कि शक्ति अनाश्रित कैसे होती है ? निरपेक्ष स्वतंत्र शक्ति मानते हैं और शक्ति शक्तियोंका योग करते हैं और उसपर प्रयोग करते हैं, किन्तु शक्ति शक्ति मानको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी नही रह सकती। एक ही पदार्थमें शक्तिको जुदी निरखना, उसकी परिणति परिणमन कर्म क्रियाको जुदी निरखना, और उसमें सामान्य धर्म नजर आना उसे जुदा करना। उस ही एकमें विशेषत्व भी दृष्टिमें आना, उसे जुदा करना और जुदा हुए ही बने रहें तो कुछ बात ही न कर सकेंगे, कुछ उत्तर ही न दे सकेंगे सो जुदे भी मान लेना और समवाय सम्बन्धसे उनको एकमेक कर देना यह तो बाँटोंको तौलनेकी तरह है। जैसे बाचक लोग किसी तराजूके पलड़ेपर बाँटसे बाँट तौलते हैं, एक पलड़ा नीचे जाता, दूसरा ऊपर आता, फिर ऊपर वाला पलड़ा नीचे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता. यों बालकोंका वह खेल एक मनोविनोद भरका है, ऐसे ही दार्शनिकोंका यह भी एक मनोविनोद है, आत्म हितके लिए बढ़ना, किस तरह चलना ये बातें गौण करके केवल एक मनोविनोदके आधारपर वस्तु स्वरूपके निरूपणमें बढ़ना इसमें ही जिन्हें मौज आ रहा है उन दार्शनिकोंमें विशेषवादीकी चर्चा चल रही है विशेषवादमें द्रव्यसे गुणजुदा पदार्थ है। जैसे द्रव्य सत् है ऐसे ही गुण भी सत् है। उन गुणोंमेंसे रूप, रस, गंध स्पर्श, संख्या परिमाण इन ६ गुणोंका वर्णन हो चुका, अब ७ वाँ गुण है पृथक्त्व गुण, उसकी चर्चा चलेगी।

शंकाकार द्वारा पृथक्त्वनामक गुण पदार्थकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि पृथक्त्व नामका गुण एक अलग और वास्तविक गुण है। पृथक्त्व कहते हैं अलग रहनेको। इस पिछिसे यह पुस्तक पृथक है। हैं ना ये दोनों अलग-अलग ? तो ऐसे द्रव्यसे जो अयुक्त भी हो, कभी पुस्तकपर पिछि रखी हो तब भी न रखी हो तब भी सर्व स्थितियोंमें जिस गुणकी वजहसे द्रव्यको यों बता दिया जायकी यहाँ यह प्रथक् है, इससे यह अलग है ऐसा विभाग किया जाय जिस गुणके कारण, जो अलगावके व्यवहारका कारण बने ऐसे गुणका नाम पृथक्त्व गुण है। कोई यह कहे कि पिछीसे पुस्तक अलग है तो यह अलगाव पिछीकी चीज है, पुस्तककी चीज है। पुस्तक और पिछी इन दोको छोड़कर अलगाव नामका गुण एक है अलग, सो बात नही। पिछीका पुस्तकसे भिन्न होना एक गुण है कि केवल पिछीका जब हम ज्ञान करते हैं तो इससे यह पृथक् है, क्या यह ज्ञान हो जाता है ? नही होता। पुस्तकका हम जब ज्ञान करते हैं तो यह पुस्तक पिछीसे अलग है, क्या यह ज्ञान हो जाता ? नही होता। कभी इन दोको ही जाना तो दोको जान रहे हैं वहाँ भी दोके ज्ञानसे यह इससे पृथक् है यह नही जाना जाता तो यह इससे अलग है यहाँ वह पृथक् है ऐसा जो ज्ञान होता है यह द्रव्योंके ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान है, उन दो वस्तुवोंके ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान है जिसके द्वारा पृथक्त्व नामका गुण ग्रहण किया गया है सुख आदिककी तरह। जैसे आत्मामें सुख है, ज्ञान है, अनेक चीजें हैं, सुख गुण अलग है ना ! ज्ञानमें और बात पायी जाती, सुखमें अन्य बात पायी जाती। तो यों पृथक्त्व नामका गुण एक अलग स्वतंत्र है।

पृथक्त्व गुणके समवायसे पदार्थोंका पार्थक्य माननेकी असिद्धि— अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि ये सब बातें अपने घरकी मान्यतायें हैं। वस्तुतः पृथक्त्व नामका गुण घट पट आदिकसे, पुस्तक पिछी आदिकसे भिन्न नही है। यह अनुमान करना कि पृथक्त्व गुण घट आदिकसे भिन्न है, क्योंकि घट आदिकके ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान द्वारा पृथक्त्व ग्राह्य होता हैं वह कथन मात्र है। तुम्हारा हेतु असिद्ध है। अरे ये सब पदार्थ अपने अपने कारणसे उत्पन्न हुए हैं और इसी कारणसे एक दूसरेसे स्वयं सहज अलग हैं। तो अपने हेतुसे उत्पन्न हुए और एक दूसरेसे सहज ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अलग रह रहे पदार्थोंको छोड़कर अन्य पृथक्त्व कोई प्रत्यक्षमें प्रतिभासमान नही होता अपने-अपने स्वरूपमें ये सारे पदार्थ हैं इस तरह तो प्रत्यक्षमें जाना जाता है, और जब अपने-अपने स्वरूपमें है तो उसका अर्थ यह हुआ कि दूसरेके स्वरूपमें नही है, इसीके मायने पृथक्त्व है। कुछ भी बात कही जाय वह अपने विरोध सहित होती है। कुछ भी वस्तु हो कोई धर्म हो, कोई भी बात कही जाय उसका प्रतिपक्ष जरूर है। अगर उसका प्रतिपक्ष न हो तो जो बात कही उसमें भी बल न रहेगा। जैसे कोई कहता कि हमारी बात बिल्कुल सच है तो इसका अर्थ है कि हमारी बात जरा भी गलत नही है। ये दोनों बातें उसमें मिली हुई हैं कि नही ? मिली हैं। जहाँ कुछ कहा उस ा विरोधी "नही है" यह उसमें जुड़ा हुआ है। तब दो बातोंके बिना तो गुजारा चलता ही नहीं, व्यवहार चलता ही नही। चाहे उसका हम प्रयोग करें या न करें मगर दो बातें प्रत्येक बातमें बसी हुई हैं। तो जहाँ यह कहा गया कि ये प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे ही है तो इसका ही अर्थ यह निकला कि कोई पदार्थ दूसरे पदार्थके स्वरूपसे नही है। यह बात उस ही वस्तुमें पड़ी हुई है। यह पुस्तक अपने स्वरूपसे है। जो इसमें रूप रंग आदि है वह सब अपने स्वरूपसे है। यह 'है पना" पुस्तकमें है कि नही ? है। और, इसका ही दूसरा अर्थ यह निकला कि यह पुस्तक परके स्वरूपसे नही है। तो यह "न पना" भी इस पुस्तकमें है कि नहीं ? वह भी है। तब पृथक्त्व नामका गुण अलग क्या रहा जो पदार्थसे अलग बताया जाय ? तो आपका हेतु असिद्ध हो गया। अपने ही हेतुवोंसे उत्पन्न हुए एक दूसरे पदार्थसे स्वयं ही व्यावृत्त याने जुदे रहने वाले पदार्थोंको छोड़कर अन्य कोई पृथक्त्व प्रत्यक्षमें प्रतिभासमान नही होता। और, जब पदार्थसे जुदा कोई पृथक्त्व प्रत्यक्षमें प्रतिभासमान नही हो रहा तो इस ही कारण पृथक्त्व गुण का सत्त्व पृथक्त्व नामका कोई गुण नही है, क्योंकि गुण होते तो वे गुण उपलब्धिमें आ सकते थे और आ नही सके इस कारण असत् हैं।

पृथक्त्व गुणके कारण पदार्थोंका पार्थक्य माननेमें द्वितीय दोष—पृथक्त्व गुणसे पदार्थोंका पार्थक्य माननेपर दूसरा दोष यह है कि गुण किसे कहते हैं ? द्रव्याश्रयाः निर्गुणाः गुणाः। जो द्रव्यके आश्रय हो और स्वयं गुण शून्य हो उसको गुण कहते हैं। तो पृथक्त्व नामक तुमने गुण माना और ऐसा ज्ञान देखा जाता रूपादिक गुणोंमें भी देखो रूपसे रस पृथक है। और है भी पृथक् अगर स्वरूप देखो तो रूपका स्वरूप और है, रसका स्वरूप और है। यदि रूप और रस पृथक् न होते तो रसकी माँग करने वाले पुरुषको केवल उस वस्तुका रूप दिखा दो तो क्या वह तृप्त हो जायगा तृप्त तो नही हो सकता। तो रूपसे रस पृथक् है यह भी तो ज्ञान होता है और रूप रस हैं गुण उन गुणोंमें पृथक् गुण और लगा बैठे तो गुणोंमें गुण तो नही रहा करते लेकिन यहाँ गुणोंमें गुण हो गए। जैसे कहते हैं कि पिछीसे पुस्तक अलग है इसी तरह यह भी तो कहते हैं कि पुस्तकके रूपसे पुस्तककी गंध अलग है। गंध तो घ्राणसे जानी जायगी और रूप चक्षु इन्द्रियसे जाना जायगा। तो गुणोंमें भी पृथकपनेकी बात चलती

http://www.jainkosh.org

है. ज्ञान होता है, तो उससे सिद्ध है कि पृथक्त्व नामका कोई गुण नहीं है। अपने अपने स्वरूपसे जैसे गुण हैं उन्हें समझ लिया, वे परस्पर दूसरे स्वरूपसे अलग हैं ही। पदार्थमें भी जब पृथकपनेकी बात ज्ञानमें आती है तो वहाँ भी यह आया कि पदार्थ अपने-अपने स्वरूपसे हैं लेकिन स्वयं ही दूसरेसे अलग हैं। उनका ज्ञान कर लिया। अन्यथा, रूपादिक गुणमें जो पृथक्त्वका ज्ञान होता है तो वहाँ यह दोष आ गया कि गुणमें देखो गुण रहने लगा, पर गुणोंमें गुण तो रहा नहीं करते। गुणोंमें गुण रहने लगें तब तो न द्रव्यकी सिद्धि होगी, न गुणकी। किसी भी पदार्थका ज्ञान गुणके कारण होता है। अब जिन गुणोंके कारण पदार्थका ज्ञान होगा उन गुणोंका भी तो ज्ञान होना चाहिए। उन गुणोंका स्वयं ज्ञान मानोगे नहीं। और, गुणोंसे उन गुणोंका ज्ञान होगा तो उनका भी ज्ञान और, गुणोंसे, उनका भी ज्ञान और गुणोंसे। तब तो गुणों गुणोंके ही ज्ञानमें जिन्दगी बिता डाली जायगी प्रस्तुत पदार्थका ज्ञान हो ही नहीं सकता यह भी नहीं कह सकते कि पदार्थोंमें यह इससे पृथक् है, ऐसा पृथक्त्वको ज्ञान तो मुख्य है। और, गुणोमें यह गुण इस गुणसे पृथक् है उसमें पृथक्त्व गुण औपचारिक है, यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि जैसे निर्बाध पृथक्त्व हमें द्रव्य-द्रव्यमें जच रहा ऐसे ही गुण गुणीमें जच रहा। तो जैसा ज्ञान तुम्हारे मुख्य पृथक्त्वमें हो रहा वैसा ही ज्ञान जहाँ तुम गौण पृथक कह रहे वहाँ भी हो रहा। और, देखिये-ज्ञानके समान ज्ञानको भी अगर औपचारिक कह दिया जाय तो कोई बदलकर यह भी कह सकता कि यह मुख्य ज्ञान औपचारिक है। गुणोंमें जो पृथक्त्वका ज्ञान हो रहा वह सही है और यहाँ का ज्ञान औपचारिक है यह भी कहा जा सकता है।

पदार्थोंसे पृथक्त्व गुणकी भिन्नता व अभिन्नता दोनों विकल्पोंमें अव्यवस्था—स्वरूपसे जो स्वयं जुदे हैं यह बात संगत नहीं बैठती। जैसे यही बतलावो कि यह पुस्तक पिछीसे अलग है ऐसा ज्ञान कराने वाला गुण है पृथक्त्व तो यह पृथक्त्व तो यह पृथक्त्व गुण पुस्तक पिछीसे अलग है या मिला हुआ है? इन दो ही बातोंका उत्तर दे दीजिये! यह पृथक्त्व गुण जिससे जान रहे हैं कि पुस्तक और पिछी न्यारे-न्यारे हैं, यह यदि इन दोनों वस्तुओंसे भिन्न हैं तो फिर यह पृथक्त्व गुण इसमें कुछ काम ही नहीं कर सकता, इसका अलगाव ही नहीं बता सकते क्योंकि यह भिन्न है, भिन्नका क्या मतलब? दुनियामें जैसे अनेक पदार्थ पड़े हुए हैं वहाँ यह काम तो नहीं हो रहा? तो देखो पृथक्त्वसे इन पदार्थोंके पृथक्त्वका ज्ञान नहीं किया जा सकता यदि कहो कि पृथक्त्व, इन दोनों ही पदार्थोंसे अभिन्न हैं तो इसके मायने यह हुआ कि ये पदार्थ स्वरूपतः हो एक दूसरेसे पृथक हैं। पृथक्त्व गुण कुछ अलग नहीं रहा। जो जो परस्पर एक दूसरेसे अलग रूपसे रहते हैं अपने आप अलग। उन्हें अपनेसे भिन्न किसी पृथक्त्व गुणका आधार न चाहिए। चीज है, जो है सो है। इसीके मायने है एक दूसरेसे न्यारा होना। जैसे रूप रस आदिक गुण हैं वे परस्पर एक दूसरेसे अलग हैं तो उनको अपनेसे अतिरिक्त किसी पृथक्त्व गुणका आधार न चाहिए। ये वैशेषिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रूप, रस, गंध, स्पर्शको स्वयं ही एक दूसरेमें जुदे स्वरूप वाला मानते हैं, पृथक्त्व गुण के कारण उन्हें जुदा नही मानते, क्योंकि पृथक्त्व गुणके कारण रूप रस आदिकको जुदे-जुदे मान लें तो गुणोंमें गुण आ गए यह दोष आयगा। सो गुणोंमें तो ये पृथक्पना स्वयं मानते हैं और पदार्थोंमें पृथक्पना पृथक्त्व गुणके कारण मानते हैं। तो जैसे अपने-अपने स्वरूपसे रहने वाले गुणोंमें पृथक्पना स्वयं है इसी तरह अपने अपने स्वरूपसें रहने वाले पदार्थोंमें पृथकपना स्वयं है। इसलिए पृथक्त्व नामका गुण कोई अलग चीज नही है।

स्वरूपतः सिद्ध पार्थक्यके अवगमका आत्महितमें विशिष्ट सहयोग—भेद विज्ञान उत्पन्न करनेके लिए पृथक्त्वका ज्ञान करना ही होगा, इसमें कोई संदेह नही, पर पदार्थमें पदार्थोंके स्वरूपको ही निरखकर पृथक्त्वका ज्ञान करते तो इससे कुछ प्रेरणा मिलती, प्रगति होती। लेकिन करनेका काम तो कुछ किया नही, और इस उधेड़ बुनमें आ गए कि ये पदार्थ जो अलग-अलग हैं सो ये किसी पृथक्त्व गुणके कारण हैं। स्वयं जच रहे हैं। पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमें हैं इस कारण एक दूसरे से अलग हैं। अब उनका स्वरूप जान लें और स्वरूप ज्ञानके प्रतापसे उनमें परस्परका अलगाव भी जान लें। काम बन गया। जिनको आत्महितकी वाञ्छा है वे वस्तुका ज्ञान इस पद्धतिसे करेंगे कि जिसमें आत्महितकी बात नजर आती रहे और जिनको केवल लोकमें अपका पाण्डित्य जाहिर करने की अभिलाषा है वे वस्तुस्वरूपको इस पद्धतिसे जानेंगे कि जिसमें कुछ ऐसी बात समझमें आये कि यह तो हमने कभी सुना न था। कुछ अचरज जैसी बात लगेगी। उस ढंगकी पद्धति होती है पाण्डित्य प्रदर्शन की पर आत्महितकी दृष्टिमें तो सीधा संक्षेपमें पदार्थोंको जानने की बात है। जो पदार्थ संक्षिप्त है ही, पदार्थ विस्त्रित नही है पदार्थका विस्तार तो हम अपनी लायक समझ बनानेके लिए किया करते हैं। पदार्थ विस्त्रित नही है। जैसे कहते हैं कि पदार्थके गुण अनन्त हैं पदार्थकी महिमा अपरम्पार है। यह एक जब विस्तारमें चले, पाण्डित्यमें चलें वहाँ कि बात है. और आत्महितकी दृष्टिसे पदार्थ सुगम है. पदार्थ एकत्वको लिए हुए है, पदार्थ अति संक्षिप्त है। और इन पदार्थोंका प्रयोजनिक रहस्य जानना यह बहुत सुगम है। कोई कठिन नही है। जब हम आत्महृष्टिके पंथसे चलकर वस्तुका परिचय पाते हैं तो कुछ भी वर्णन किया जाय उसमें भेदविज्ञानकी बात स्वरूपसे अस्ति, पर-रूपसे नास्ति, इस पद्धतिका अनुसरण होता है, और पदार्थ है भी स्वरूपमात्र इसलिए संक्षिप्त है। ऐसे संक्षिप्त सुगम स्वरूपमात्र पदार्थके जाननेमें कुछ भी कटिनाई नही है। जब चित्तमें घर बसा हों, दूकान बसी हो, बाल बच्चे बसे हो, वैभव बढ़ानेकी बात बसी हो, लोकमें यश चाहनेकी बात बसी है, ऐसी बातें जहाँ बसी हों वहाँ पदार्थका संक्षिप्त स्वरूप, जो एक नजरमें पूरा एकत्व आ सकता है वह उन विकल्पों वाले उपयोगमें कैसे समा सकता है? तो पदार्थ अपने स्वरूपसे है और इसी कारण एक पदार्थ दूसरे पदार्थसे अलग है। उनको अलग करनेके लिए पृथक्त्व नामका कोई गुण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अलग हो और उसके कारण ये अलग किए जाते हों सो बात नहीं है।

असाधारण धर्मसे ही पृथक्त्वका ज्ञान हो जानेसे पृथक्त्व गुण पदार्थ की असिद्धि— जब कि अपने-अपने पदार्थसे अलग पृथक्त्वके अनाधार घट पट आदिक पदार्थ देखे जाते हैं याने इन पदार्थोंसे भिन्न पृथक्त्व नामका कोई गुण या किसी भिन्न पृथक्त्व नामके गुणके आधारमें ये घट पट नहीं देखे जाते इससे सिद्ध है कि भिन्न भिन्न स्वभाव रूपसे उत्पन्न हुए पदार्थ ही पृथक् इस ज्ञानके विषयभूत हैं। तब अलगसे पृथक्त्व नामक गुणकी कल्पना करना व्यर्थ है। प्रथक्त्व ज्ञानका भी होना असाधारण धर्मसे ही माना गया है। कोई यह शंका न करे, मनमें न सोचे कि वस्तुसे भिन्न जब पृथक्त्व नामका कोई गुण नहीं है तो यह प्रथक् है, यह प्रथक् है ऐसे ज्ञानकी उत्पत्ति कैसे होगी? प्रथक् है यह ऐसे ज्ञानकी उत्पत्ति असाधारण धर्मसे ही होगी। जो पदार्थ जिस स्वरूपमें रहता है अर्थात् पदार्थका अपने आपके स्वरूप मात्रमें रहनेका नाम है असाधारण धर्म। याने वस्तुका जो चतुष्टय स्वरूप है वही उसका असाधारण धर्म है, तो देखिये! जब एक वस्तु अन्य वस्तुओंसे भिन्न देखी जाती है तो जानने वाला उस समय यों जानता है कि यह एक प्रथक् है, विविक्त है। अन्य सबसे जुदा है। और जब दो पदार्थ अन्य पदार्थोंसे विलक्षण एक धर्मके सम्बन्धसे भिन्न-भिन्न देखे जाते हैं तो जानने वाला यों मानता है कि दो प्रथक् हैं और जब एक देश रूपसे, एक कालके रूपसे, किसी एकपनेसे तो जानने वाला यों मानता है कि ये सब इससे प्रथक् हैं। तो ये ज्ञेयभूत विषयपर आधारित हैं कि जानने वाला प्रथक्त्वका ज्ञान करले। देखो ना एक पुद्गल द्रव्यमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक गुण हैं तो द्रव्यका स्वरूप तो अभेद है गुणका स्वरूप भेद है तब द्रव्यसे गुण पृथक हुए ना? स्वरूप संख्या आदिककी अपेक्षा से। तो वहाँ भी यह व्यवहार चलता है कि रूपादिक गुण द्रव्यसे पृथक हैं, तो प्रथक् हैं, प्रथक् हैं इस प्रकारका ज्ञान असाधारण धर्मसे हो जाता है। इस प्रकार पृथकत्व नामका गुण कभी सिद्ध नहीं होता।

शंकाकार द्वारा संयोग और विभाग नामक गुण पदार्थके सद्भावकी सिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि संयोग और विभाग नामके दो गुण माने बिना काम चल ही न सकेगा जिन चीजोंकी प्राप्ति न थी है उन अप्राप्त चीजोंकी प्राप्ति हो गयी सो संयोग हो गया। न था और आ गया, इसीका नाम संयोग है। और, प्राप्ति पूर्वक अप्राप्ति होनेका नाम विभाग है। पहिले निकटमें ये संयोगमें थे अब उनकी प्राप्ति न रही, जुदे हो गए, वही विभाग हुआ। और ये दोनों गुण संयोग और विभाग पदार्थ में संयुक्त और विभक्त ज्ञानके कारण होते हैं। यह चौकी पुस्तक संयुक्त है। इस ज्ञान का कारण हुआ संयोग गुण और इस चौकीसे दरी विभक्त है इस ज्ञानका कारण हुआ विभाग गुण तो देखो ना! संयोग और विभाग नामके गुण सुद्ध वास्तविक और इन गुणोंके कारण संयुक्त ज्ञान, विभक्तज्ञान ये बराबर चलते रहते हैं। याने संयुक्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थका ज्ञान और विभक्त पदार्थका ज्ञान संयोग और विभाग गुणके कारण होता है।

संयोग व विभाग गुणके स्वरूपकी असिद्धि—अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं कि संयोग तो कोई चीज ही नही है, पदार्थ हैं और वे भिन्न-भिन्न पदार्थ निकट आ गए इस होका नाम संयोग रख दिया जाता है। कोई संयोग नामक गुण वास्तविक हो, जिसकी अर्थ क्रिया हो, जिसमें सत्त्व हो ऐसा कोई गुण नही है। और संयोग नामक कोई गुण न रहा तो यों कहना कि प्राप्ति पूर्वक जो अप्राप्ति है उसका नाम विभाग है याने प्राप्ति हुआ संयोग और संयोग होकर फिर संयोग न रहे वे जुदे जुदे हो जायें इसका नाम विभाग है यह भी असिद्ध है। देखो! जब जब संयोगका ज्ञान होता है कि ये दो पदार्थ संयुक्त हैं तो वहाँ हुआ क्या कि वे दोनों पदार्थ पहिले सान्तररूप थे याने उनकी अवस्थितिमें अन्तर था। एक पदार्थ एक देशमें और दूसरा पदार्थ दूसरे देशमें था तो पहिले उनमें सान्तर रूपता थी। मायने अन्तरसे रह रहे थे। अब हुआ क्या कि सान्तर रूपताका परित्याग हुआ। सो सान्तर रूपताके परित्यागसे निरन्तर रूपतासे अब वस्तु उत्पन्न हो गयी। तो यही तो अर्थ हुआ कि सान्तर रूपता का त्याग करके निरन्तर रूपतामें आना अर्थात् जहाँ अन्तर न रहे ऐसे प्रदेशमें अवस्थित हो जाना, यही संयुक्त ज्ञानका विषयभूत है। उस वस्तुको छोड़कर अन्य और कोई संयोग नही है, जो संयोगके या संयुक्तके ज्ञानका विषयभूत बन सके। जो पदार्थ अविच्छिन्न उत्पत्ति वाला है अर्थात् अन्तर सहित नही, किन्तु निरन्तर निकटमें अवस्थिति वाला है सो वही वस्तु निरन्तर ज्ञानका विषय होता है अर्थात् ये दोनों पदार्थ अन्तर रहित ठहरे हुए हैं। इसीका नाम तो संयुक्त है। तो यों संयुक्त ज्ञानको कहो अथवा निरन्तरताके ज्ञानको कहो, विषयभूत पदार्थ वही पदार्थ है जो निरन्तर रूपसे अविच्छिन्न रूपसे अतिनिकट रूपसे अवस्थित है। जैसे कि दो पुरुषोंके दो घर निरन्तर से उपरचित हैं अर्थात् घरसे घर मिला हुआ है, उसमें अन्तर नही पड़ा है। तो ये दो मकान संयुक्त हैं, पास पास टसे हुए बने हुए हैं। ऐसे ज्ञानका विषयभूत हुआ क्या कि अन्तर रहित उन मकानोंकी अवस्थिति वे स्वयं मकान जो अन्तररहित होकर बने हुए हैं सो ही संयुक्त ज्ञानके विषयभूत हैं, न कि संयोग है वहाँ संयुक्त ज्ञानका विषयभूत है।

संयोग गुणके अभावका एक और प्रमाण—अब और भी सुनिये! अन्तर रहित रचे गए मकानमें जो संयुक्तपनेका ज्ञान हो रहा है उसका कारण संयोग क्यों नही है कि संयोग गुण है और मकान भी गुण है, मकान विशेषवादमें अवयवी द्रव्य नही माना गया है, अवयवी द्रव्य तो एक एक ईंट है, अब उन अनेक ईंटोंका जो संयोग बना है अथवा काठ लोहा आदिक विजातीय पदार्थोंका जो संयोग बना है उसको कहते हैं महल। तो महल हुआ संयोग गुणरूप और संयोगमें संयोग बताना, महलमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संयोग बताना यह तो गुणमें गुणका बताना हुआ। गुणोंमें गुण रहा नहीं करते, क्योंकि 'निर्गुणाः गुणाः' गुण सब गुणरहित ही हुआ करते हैं अर्थात् गुणोंमें अन्य गुण नहीं समाता। तो संयोगात्मक होनेसे वे महल गुणरूप हुए और उनमें संयोगगुण बताया जा रहा तो यह गुणोंमें ही गुण कहा जा रहा, सो अभीष्ट बात है।

विभाग गुणकी असिद्धिका निरूपण - संयोग गुणकी असिद्धिकी तरह विभागकी भी बात सुनो! विच्छिन्न उत्पन्न अथवा अन्तरसहित ठहरे हुए पदार्थको छोड़कर अन्य और कोई विभाग नहीं है और अन्तर महित अवस्थित पदाथ ही विभक्त ज्ञानके विषयभूत हैं। उन मान्तर उत्पन्न पदार्थोंको छोड़कर विभाग नामक कोई अन्य चीज नहीं है जो विभक्तत्व प्रत्ययका विषयभूत बने। जैसे हिमालय और विन्ध्याचल, ये दोनों विभक्त हैं ना! हिमालय कहीं है, विध्याचल कहीं है। तो हिमालय विन्ध्याचल ये जुदे हैं, विभक्त हैं, ऐसा जो ज्ञान हुआ उस ज्ञानका विषयभूत क्या पड़ा? वे ही हिमालय और विन्ध्याचल। उनमें तो विभागका लक्षण तक भी नहीं जाता। विभागका लक्षण यह किया गया है विशेषवादमें कि प्राप्ति पूर्वक अप्राप्ति होना। पहिले तो संग हुआ और फिर उनसे अलग हो जाना इसका नाम है विभाग। तो विन्ध्याचल और हिमालयका संयोग कब था? इन दोनोंमें प्राप्ति कभी न थी और प्राप्ति पूर्वक पूर्वक अप्राप्तिको विभाग कहते हो तो विभागका लक्षण भी विन्ध्याचल और हिमालय में नहीं गया और फिर भी विभक्तपनेका ज्ञान हो ही रहा है, इससे सिद्ध है कि विभाग नामका कोई गुण विभक्त्व प्रत्ययका विषय नहीं है किन्तु अन्तररूपसे अवस्थित वे ही सब पदार्थ विभक्त्व ज्ञानके विषय होते हैं।

अनुमान प्रमाणसे भी संयोग विभाग नामके गुण पदार्थोंकी असिद्धि— और भी सुनो! अनुमानके रूपसे जो संयुक्त आकारकी बुद्धि होती है वह विशेषवाद कल्पित संयोगका आश्रय न करने वाले वस्तुविशेष मात्रसे ही होती है। जैसे यह बुद्धि हुई कि ये दो संयुक्त महल हैं, तो उन संयुक्त महलोंमें संयुक्ताकार रूपसे ज्ञान हुआ। ये संयुक्त महल, तो वह बुद्धि उन महल वस्तुवोंके कारणसे ही हो गयी। उन महलोंमें कोई संयोग पड़ा हो और संयोग रूप महलोंमें संयुक्ताकार बुद्धि हुई हो सो बात नहीं अथवा कोई पुरुष कानोंमें कुन्डल पहिले है तो उसे कहें कुण्डली पुरुष, कुण्डल वाला पुरुष तो इस प्रकारकी जो संयुक्ताकार बुद्धि हुई है सो कानों और कुण्डलकी निरतंरता होनेसे हुई है। कहीं संयोग नामक गुणके कारण हुई हो सो बात नहीं। अथवा दूसरा प्रयोग सुनो! अनेक वस्तुवोंका सम्बन्ध होनेपर जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह विशेषवाद कल्पित संयोग रहित अनेक वस्तु विशेषमात्रमें ही होती है अर्थात् जहाँ अनेक वस्तुवों का सन्निपात हुआ उससे ही यह साव्यवहारिक बुद्धि हुई और वहाँ ज्ञान हुमा कि ये सब पदार्थ संयोगसे रहित हैं।

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुणपदार्थोंकी असिद्धिका एक और कथन—जैसे अन्तररहित अवस्थित अनेक सूतोंके विषयमें होने वाली जो बुद्धि है यह पट है, यह संयुक्त है, इस तरहकी जो बुद्धि है वह देखो ना ! संयोगगुण विकल उन अनेक तंतुओंके निरन्तर रहनेसे होरही है, यही बात सभी संयुक्त प्रत्ययोंमें घटा लेना चाहिए। तो जैसे संयुक्तकार बुद्धि संयोग गुण रहित उन ही वस्तुके विशेषमात्रसे ही हो जाती है इसी प्रकार विभाग रूपकी बुद्धि विभाग गुणरहित पदार्थ मात्रके कारणसे हो जाती है। जैसे बहुत सी गायें हैं और उसमें ऐसी विभक्त बुद्धि बने कि इस गायसे यह गाय अलग है। बिल्कुल साफ विलक्षण जजती है तो हुआ क्या, उस विभक्त्व बुद्धिका कारण वहाँ गाय हुई। विभाग नामक कोई गुण नही है विभाग गुण आकर लगे उनमें तो विभक्त्वका ज्ञान है ऐसा नही है अथवा अनेक पदार्थोंके सन्निधानके आधीन उस विभक्त्व बुद्धिका उदय हुआ है याने इन्द्रिय पदार्थ आदिक अनेक कारणोंका सम्बन्ध होता है तब ज्ञान बनता है, तो उस ही ज्ञानमें संयुक्तत्वकी बुद्धि बनती है और ऐसे हो सन्निधानमें विभक्त्वकी बुद्धि बनती है। जैसे—देवदत्त और यज्ञदत्तका घर दूर दूर है तो उन महलोंके परिज्ञान का कारण हुआ इन्द्रिय अर्थका सन्निकर्ष प्रकाश आदिक उन सबके होनेपर यह ज्ञान बना तो उन महलोंके कारणसे ही बना विभाग नामका कोई गुण हो उससे बना हो सो नही। हिमालय और विन्ध्याचलमें तो यह बात साफ है कि उनमें विभाग गुण है हो नही। संयोग पूर्वक विघटनका नाम विभाग है तो इनका कोई संयोग ही न हुआ तो देखो इनके विभाग गुण तो नही लगा है लेकिन विभक्त्व रूपसे न दोनोंका ज्ञान हो ही रहा है, इससे विभाग नामका भी कोई गुण सिद्ध नही होता। और, संयोग नाम का भी कोई गुण सिद्ध नही होता है।

संयोग मान लेनेपर भी विभाग गुणकी असिद्धि—कदाचित् मान लो कि संयोग नामका कोई गुण है या संयोगको मान भी लो कदाचित् तो विभाग तो संयोग के अभावका नाम है ना ? तो अभाव तो तुच्छाभाव है, वह गुण कैसे बन सकता है ? और, विभागको माना है कि कुछ काल स्थायी रहे ऐसा गुण। तो देखो ! जो पुत्र चिरकालसे अलग है, बहुत समयके बाद भी उसमें विभक्तत्वका प्रत्यय किया जाता है कि यह पितासे अलग है। उसमें विभक्तका प्रत्यय किया जाता है कि यह पितासे अलग है, तो संयोग दूर हुए तो बहुत दिन हो गए थे, अब बहुत कालके निवृत्त संयोगकी जगह विभाग तो न बनना चाहिए। विभाग तो तत्काल जैसे भेदका नाम है। संयोग है अब उसका भेदन हो रहा है वह जुदा हो रहा है उसका नाम विभाग है, अथवा साफ दृष्टान्त ले लो—हिमालय और विन्ध्याचलमें संयोग कभी हुआ ही नहीं, और संयोग हो फिर उसके अभावका नाम विभाग कहते हैं तो विभाग रूपसे ज्ञान इनमें हो न सकेंगे। तो देखो ! हिमालय और विन्ध्याचलमें संयोग अनुत्पन्न होनेपर भी विभक्त्व रूपसे ज्ञान हो ही रहा है, लेकिन इस विशेषवादमें विभक्त्वरूपसे ज्ञान कैसे बने ? हिमालय और विन्ध्याचलका पहिले संयोग हो और पीछे इनके विभाग किए गए हों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसा तो है नहीं। वस्तुसे भिन्न कोई विभागस्वरूप कभी भी नही पाया जाता। तब कहीं उपचार कल्पना बनाना भी सही नही बनता कि जैसे कोई कह बैठे कि हिमालय और विन्ध्याचलमें जो विभागकल्पना है वह उपचार कल्पना है। जब कहीं मुख्यरूपसे प्रसिद्ध हो तो उसका कहीं उपचार भी बताया जा सकता है, पर विभाग का स्वरूप ही कहीं सिद्ध नहीं है। वस्तुके विभाग तो कुछ चीज ही नही हैं। जब विभाग कहीं उपलब्ध ही नही है तो किसीमें विभागका उपचार बता देना तो कभी सिद्ध हो ही नहीं सकता।

संयोगनिवृत्ति और विभागका कारण कर्म—यहां यह शंका न करना चाहिए कि यदि विभाग गुण न माना जाय तो संयोगकी निवृत्ति कैसे बनेगी? संयोगकी निवृत्ति भी कर्मसे ही बनती है। जैसे धनुषसे बाण चलाया तो क्रियासे ही विभाग बन गया ना! अब कोई ऐसी शंका करे कि तब तो फिर क्रियामात्रसे ही संयोग की निवृत्ति हो जाना चाहिये। उत्तरमें कहते हैं कि हो जावो इसमें क्या दोष? कर्ममात्रसे संयोगमात्रकी निवृत्ति हो जायगी, पर संयोग विशेषकी निवृत्ति कर्म विशेषसे होगी। जैसे कि वैशेषिकके मतमें भी माना गया है कि संयोग विशेषकी निवृत्ति होनेपे विभाग विशेषकी उत्पत्ति होती है। तो यों विभागका भी कारण कर्म रहा, क्रिया रहा। और, संयोगका भी कारण कर्म रहा, सो विभाग और संयोग नामक गुणको अलगसे माननेकी कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती।

संयोग विभाग गुणकी मीमांसाका संक्षिप्त पुनर्निरूपण—शंकाकार यहाँपर संयोग और विभाग नामके दो गुण बता रहा है। दो बिखरी हुई चीजें इकट्ठी मिल जायें, निकट आ जायें, यह तो होता है संयोग गुण पूर्वक और मिली हुई चीजें अलग हो जायें यह होता है विभागगुणपूर्वक। यद्यपि सुननेमें यह बहुत भला लग रहा है कि ठीक ही तो है. संयोग गुणके कारण चीज इकट्ठी हो गई, विभाग गुणके कारण चीज अलग हो गयी, लेकिन गुणका क्या लक्षण है उसपर दृष्टि डालनेसे यह बात बिल्कुल अयुक्त विदित हो जाती है। प्रथम तो जिन चीजोंका संयोग विभाग हुआ है, हुआ क्या? अन्तरसे रहने वाली चीज है उसका तो नाम है विभाग और अन्तर रहित, निकट चीज आ गयी उसका क्या गुणपना है. वह तो उन वस्तुवोंका ही गुणपना है कि जो पहिले अन्तर सहित थे अब निकटमें आ गए। दूसरी बात यह है कि संयोग केवल द्रव्यमें ही तो नही कहा जाता। गुणमें भी संयोग कहा जाता। जैसे दो मकानों में संयोग हो गया, एक साथ दो मकान लगे हुए थे तो मकानमें संयोग कहा गया। अब देखो विशेषवादके अनुसार मकान कोई द्रव्य नहीं है। द्रव्य तो ईंट, काठ लोहा आदिक हैं, विजातीय सजातीय अनेक स्कंधोंका जो संयोग हुआ है उसका नाम मकान है। तो मकान भी एक संयोग है। तो संयोगमें संयोग बता रहे तो गुणमें गुण आ गया ना? इसी तरह प्रकट गुणोंमें भी संयोगकी बात लगती है। यों संयोगका स्व-

http://sahjanandvarnishastra.org/

रूप सिद्ध नहीं है। और जब संयोग सही न रहा तो संयोगपूर्वक ही विभाग किया जाना था। विभाग न रहा।

विभाग गुणके अभावमें संयोगनिवृत्तिकी समस्याकी शंकाका समाधान—यहाँ पर कोई मनमें यह शंका न रखे कि जब विभाग न रहा तो संयोग कैसे हट गया? अरे क्रियासे ही संयोग बनता है। क्रियासे ही संयोग हटता है। संयोग विभाग नामके गुणकी जरूरत नहीं है। क्रियासे संयोग होता है। दो चीजें अलग-अलग बिखरी हुई थीं, उन दोनोंमें क्रिया हुई। वे अपनी जगहसे हटकर चले तो क्रिया होनेसे अब उनमें संयोग हो गया। यहाँ शंकाकार कहता है कि क्रिया तो संयोगका उत्पादक हो गया। क्रिया होनेसे दो पदार्थोंमें संयोग बन गया। मगर क्रियासे संयोग की निवृत्ति कैसे ठीक कही जायगी? क्रियासे संयोग बनता है, क्रियासे संयोग नष्ट होता है, यह कैसे कहा जायगा? उत्तरमें कहते हैं कि ठीक है। क्रियासे ही संयोग बनता है, और क्रियासे ही संयोग नष्ट होता है। जैसे किसी धनुर्धारीने बाण चलाया तो पहिले तो उसका बाणमें संयोग हुआ, हाथका, धनुषका, बाणका संयोग हुआ। तो देखो हाथ आया, धनुष पास आया, बाण निकट आया तो क्रिया, हुई ना सबमें। तो संयोग बन गया। और, अब देखिये–उस संयोगसे बाणमें क्रिया बनी, संयोग ही क्या? जोरसे खींच करके फेंका तो क्रिया उसमें संयोगपूर्वक हुई। और, आगे चलकर जिस वृक्षमें बाण लगा उस वृक्षके पास जाकर वहाँ क्रिया मिट गई। संयोग मिट गया। तो वहाँपर बाणका संयोग वृक्षसे हो गया, अब वृक्ष बाणको आगे नहीं जाने दे रहा बतावो—यहाँ संयोग क्रियाका निवर्तक कैसे हो गया? सुनिये! कहोगे कि अन्य संयोगसे उसकी निवृत्ति हुई। कहते हैं कि यही उत्तर सब प्रसंगोंमें लेना चाहिए। हम यह तो नहीं कहते कि जिस क्रियासे संयोग उत्पन्न होता है उसी क्रियासे संयोग मिटता है। देखो हस्त बाण आदिकके संयोगसे तो उस बाणमें क्रिया बनी और वृक्ष बाणके संयोगसे क्रिया मिटी तो क्रियाको रचने वाला संयोग दूसरा है और क्रियाको नष्ट करने वाला संयोग दूसरा है। इसमें संयोग विभाग नामके गुण कुछ नहीं है। यह तो पदार्थोंकी क्रियासे ही संयोगविभाग बना बनता है।

विभागज विभाग पदार्थकी असिद्धि—अब शंकाकार विभागको तो गुण मानता ही था। अब एक ऐसा विभाग मान रहा जो विभागसे विभाग पैदा हो। वह है विभागजविभाग। उसके उत्तरमें कहते कि यह भी केवल अपनी कल्पनामात्र है। विभागजविभाग क्या है? संयोगका अभाव। उसकी भी क्रियासे उत्पत्ति हो जायगी, विभागजविभागका भी कोई सत्त्व नहीं। शंकाकार कहता है कि विभागजविभाग नामक गुण न हो तो देखो एक भींटपर हाथ रखा है तो वहाँ क्या है? हाथका और भींटका संयोग है। तो हाथ और भींटका संयोग होनेसे शरीरका और भींटका संयोग रहा ना! और जब हाथको हटा लिया तो हाथ और भींटका संयोग नष्ट हो गया, तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अब यहाँ जो शरीरका और भींटका संयोग मिटा वह हाथ और भींटके संयोग मिटासे मिटा, तो देखो अगर विभागजविभाग नहीं होता तो हाथ और भींटका संयोग मिटने पर भी शरीर और भींटका संयोग न मिटेगा। शरीर और भींटका संयोग इसी कारण मिटा ना ! कि हाथ और भींटका संयोग मिटा। तो हाथ और भींटका विभाग होने से शरीर और भींटका विभाग हो गया। तो यह विभागजविभाग है। यदि विभागज विभाग न मानो तो हाथ और भींटका विभाग होनेपर भी शरीर और भींटका विभाग न बन सकेगा। उत्तरमें कहते हैं कि हाथ और भीटके संयोगका ही नाम शरीर और भीटका संयोग है। कोई वहाँ दो चीजे नही हैं। तो जब एक ही बात हुई तो हाथ और भींटका संयोग मिला इसका ही नाम है शरीर और भीटका संयोग मिटा हो, कोई दो चीजें अलग हों तब तो यह दोष दे सकते हो। यदि यह कहो कि शरीर और भींटका संयोग तो हाथ और भीटके संयोगसे ही बना, तो ठीक है, तब फिर जब एक जगह यह बात बनने लगी कि हाथ और भींटका संयोग होनेसे शरीर और भींटका संयोग बन गया तो हम कहते कि हाथमें क्रिया होनेसे फिर शरीरमें क्रिया क्यों नही बन जाती ? कोई पुरुष हाथ ही हिलाता रहे तो उसका सारा शरीर भी क्यों नही हिल रहा ? जो कुछ भी इसका उत्तर होगे वह उत्तर प्रसंगमें भी लग जायगा, इससे संयोग और विभाग नामका कोई वास्तविक गुण नही है।

विभाग गुणकी प्रसिद्धिके लिये अनुमान देनेका शंकाकारका अन्तिम प्रयास

शंकाकार विभाग गुणकी प्रसिद्धिके लिये यह अनुमान कह रहा है कि विवक्षित अवयवी द्रव्यके अवयवोंकी क्रिया आकाश आदिक प्रदेशोंसे विभागको नही करती क्योंकि क्रिया तो वह द्रव्यको रचने वाले संयोगके विरोधी विभागको उत्पन्न करता है आकाश प्रदेशका विभाग नही करता। तभी यह बात बन जाता है कि भींटसे हाथका सम्बन्ध था तो हाथका सम्बन्ध टूटा लेनेसे शरीरका सम्बन्ध भी टूट गया। देखो ! जो आकाश आदिक प्रदेशोंका विभाग करने वाली क्रिया है, वह क्रिया संयोगविशेषको रचने वाले विभागकी जनक भी नही हो सकती। जैसे अगुलीकी क्रिया। एक अंगुली अभी खड़ी हुई है और उसका सकोच कर दिया, टेढ़ी करके नीचे जोड़में मिला दिया, तो वहाँ आकाशके प्रदेशोंका विभाग तो बन गया। पहिले उस खड़ी अंगुलीमें दूसरे प्रदेश रुके थे अब संकोच होनेसे उन प्रदेशोंका संयोग न रहनेसे विभाग बन गया। लेकिन संयोग विशेषको हटाने वाले विभागका जनक नही हो सकता। यदि जैसे अलग होने वाले बाँस अवयवी द्रव्यकी अवयव क्रिया आकाश आदिक प्रदेशसे विभाग को करदे तो उसका अर्थ यह हुआ कि अब बांस आदिक द्रव्यके आरम्भक संयोगके विरोधी विभागकी उत्पादकता अब इस क्रियामें न हो सकेगी। जैसे कि अंगुली अवयवी द्रव्यकी क्रिया आकाश प्रदेशसे विभाग तो कर देती है पर द्रव्यारम्भक संयोगके विरोधी विभागको उत्पन्न नही करती। इस कारण यह मानना चाहिये कि अवयवी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्यमें जो आकाश आदिक देशका विभाग होता है उस विभागको करने वाला विभाग नामका गुण है ।

विभागगुणकी सिद्धिके लिये शंकाकारके दिये गए अनुमानका निराकरण—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात अयुक्त है। क्रियामें विभागकी उत्पादकता है यह सिद्ध नहीं होता। क्रियासे तो संयोगकी निवृत्ति हो गयी। जैसे कि अंगुली खड़ी थी। टेढ़ी करनेपर ऊपरके आकाश प्रदेशका संयोग हट गया। यदि यह कहो कि अवयवीमें जो अवयव क्रिया है वह आकाश आदिक प्रदेशों के संयोगको नहीं हटाती, क्योंकि वह तो द्रव्यको रचने वाले संयोगको हटाने वाली है। यदि आपका यह कहना है तो यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित है, क्योंकि रूप आदिक सपक्ष हैं और उनमें देखो आकाश आदिक प्रदेशका संयोग नहीं हट रहा लेकिन द्रव्यारम्भक संयोगकी निवृत्तिका अभाव है। रूप जहाँ है तहाँ ही रह रहा है मगर अपने आपके द्रव्यको रचे बनाये रहनेका काम भी कर रहा है। यहाँ यह नहीं कह सकते कि अवयवोंके संयोगसे अवयवीका संयोग कुछ भिन्न ही होता है। अवयव के संयोगसे अवयवीका संयोग भिन्न है इस एकान्तका तो पहिले ही निषेध कर दिया। हाथ यदि भींटमें हट गया तो इसका ही अर्थ है कि अवयवी शरीर भी भींटसे हट गया। और, ऐसी प्रक्रिया बना लेना, अपने ग्रन्थोंमें रच डालना यों अवयवीमें क्रिया बनी। क्रियासे संयोग बना। संयोगसे अवयवीकी उत्पत्ति हुई तो ऐसी प्रक्रिया रच डालना और उससे फिर अवयव अवयवीमें भेद होना यह तो अपनी जिह्वाकी बात है। कुछ भी कह लो पर तुम्हारी बात युक्तिमें उतर जाय और उसमें किसी प्रमाणसे बाधा न आये तब ही तो वह प्रक्रिया समीचीन हो सकती है। जो बात सीधी स्पष्ट समझमें आ रही है। अवयवोंका संयोग हुआ। अवयवीकी रचना हो गयी और उन अवयवोंमें सिथिलपना आया या किसी निमित्तसे उनमें विभाग बन गया। तो विभाग बन गया। तो जब द्रव्यारम्भक संयोगके विरोधी विभागकी उत्पादकता क्रियामें सिद्ध नहीं होती तो विभाग नामक गुणको प्रसिद्ध करनेके लिए दोषोंसे बचनेकी वजहसे जो अनुमान बना रहे हो वह असिद्ध हो गया और इसी कारण विभाग गुण नामका पदार्थ कुछ भी घटित नहीं होता है। इस तरह २४ गुणोंमें जो विभाग नामक गुणकी प्रसिद्धि कर रहे थे वह विभाग गुण प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता है।

शंकाकार द्वारा परत्व और अपरत्व गुणकी सिद्धिका प्रस्ताव—अब शंकाकार कहता है कि परत्व और अपरत्व भी गुण है। जैसे आत्मामें ज्ञान गुण है, सुख गुण है। ये गुण हुआ करते हैं इसी तरह परत्व और अपरत्व भी गुण हैं। परत्व मायने दूर होना, अपरत्व मायने निकट होना। जैसे कहते—परे हो गए, उरे हो गए। तो परे उरे होना यह परत्व अपरत्व गुणके कारण बनता है। या उम्रमें पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होना मायने जेठा होना। अपर मायने लहुरा होना. बड़ा भाई होना, छोटा भाई होना। तो यह परापरका व्यवहार परत्व और अपरत्व गुणपूर्वक ही है। परत्व गुण न होता तो कोई पर न कहला सकता था। अपरत्व गुण न होता तो कोई अपर न कहला सकता था। यह पर है यह अपर है। ये शब्द और ये ज्ञान किस गुणके कारण हुआ करते हैं उन ही का नाम परत्व और अपरत्व है। और ये नित्य नहीं हैं, अनित्य हैं। जैसे तीन भाई हैं—बड़ा, मझिला और छोटा तो अब मझिला और छोटा इन दो में बात कहेंगे तो मझिला पर है छोटा अपर है और जब मझिला और बड़ा। इन दोका मुकाबिला करेंगे तो वह मझिला जो अभी पर कहा गया था वह अपर कहलाने लगा। तो पर अपर मिट जाने वाली चीजें हैं। ऐसे ही क्षेत्रमें भी जो परे उरे कहा जाता है वह भी अनित्य है। जिसे अभी परे कहा जा रहा वही किसी अन्य देशकी अपेक्षा उरे कहा जा सकता है। तो परत्व और अपरत्वमें अनित्य गुण है परत्व अपरत्व गुणके बिना यह व्यवहार बन नहीं सकता, इस कारण परत्व और अपरत्व गुण भी वास्तविक है। २४ गुणोंमें ये गुण १० वें व ११वें नम्बरके हैं। इनसे पहिले रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग और विभाग ये ९ गुण थे। अब यह १० वां और ११ वां गुण परत्व और अपरत्व नामका है।

परत्व और अपरत्व गुणके सद्भावकी शंकाका समाधान—समाधानमें कहते हैं कि परत्व अपरत्व कोई गुण नहीं हैं। गुण किसे कहते हैं ? जो पदार्थोंमें शाश्वत रहें। दूसरी बात—जो द्रव्यमें रहें, तीसरी बात—जिसमें और गुण न रहा करें। तीन चिन्होंसे गुणका लक्षण परिचय बनता है। पर परत्व और अपरत्वमें ये तीनों ही बातें नहीं हैं, परत्व अपरत्व शाश्वत नहीं, नित्य नहीं, अनित्य माने गए हैं। जो अनित्य हैं वे गुण कैसे हो सकते हैं ? अनित्य तो कर्म होते हैं, पर्याप्त होती है, दशा हुआ करती है। दूसरी बात—गुण द्रव्यके आश्रय हुआ करते हैं—द्रव्याश्रया: गुणा:। लेकिन परत्व अपरत्वका बोध जैसे द्रव्योंमें हुआ करता कि यह परे है, यह उरे है। पर और अपरका बोध द्रव्यमें होता है तो पर अपरका बोध गुणोंमें भी हो जाया करता है। जैसे—सामने दो चीजें नीले रंगकी रखी हैं, उनमें एक गहरा नीला है, एक हल्का नीला है। तो उनमें यह कहते हैं कि यह तो पर नील है और यह अपर नील है। देखो ! गुणोंमें भी पर और अपरका व्यवहार बन गया तो गुणोंमें गुणका व्यवहार बन गया। पर ऐसा नहीं हो सकता। और भी देखो गहरी नीली चीज तो हो उरे और हल्की नीली चीज हो परे (दूर) तो गहरी नीलको कहते हैं पर पर और हल्की नीलको कहते हैं अपर। तो देखो जो परे चीज रखी है वह तो अपर है और जो उरे चीज है, अपरकी ओर है वह हो गया पर। तो ये विषमतायें भी कैसी बन गयीं ? बात यह है कि यहां परत्व और अपरत्व गुण नहीं है किन्तु किसी भी क्षेत्र या कालकी दृष्टिसे हम उसमें प्रकर्ष और अप्रकर्ष ढूंढ़ते हैं। दूर होना निकट होना ढूंढ़ते हैं, उससे पर और अपरका व्यवहार बनता है। अन्यथा याने कोई अपेक्षा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशेष बुद्धि न हो और परत्व अपरत्व गुणके कारण ही हम उनमें पर और अपरका व्यवहार बनायें तो फिर गुणोंमें परत्व और अपरत्वका व्यवहार न बनना चाहिये। तो जैसे वहाँ परत्व अपरत्व गुणके बिना पर अपरका व्यवहार बना ऐसे ही बेन्व भाई बन्धु आदि सभी पदार्थोंमें पर और अपरत्व गुणके बिना पर और अपरका व्यवहार बन जायगा।

परत्व अपरत्व गुण बिना पदार्थव्यवस्थासे ही पर अपर व्यवहारका साधक अनुमान प्रमाण—जैसे गुणोंमें, घट आदिकमें दिशा और कालकृत पर अपर का व्यवहार बना, गुणोंमें गुणोंकी डिग्रियोंके हीनाधिकके कारण पर अपरका व्यवहार बना, इसी तरह सब पदार्थोंमें किसी अपेक्षासे पर और अपरका व्यवहार बनता है परत्व और अपरत्व गुणके कारण पर और अपरका व्यवहार नहीं बनता। उसका प्रयोग भी बना लीजिए। जितना पर अपरका ज्ञान होता है—पर मायने जेठा, अपर मायने लहुरा, पर मायने दूरकी बात, अपर मायने पासकी बात। तो जितना भी पर अपरका ज्ञान होता है वह विशेषवाद कल्पित परत्व अपरत्व गुणसे रहित पदार्थके किसी क्रम और उत्पादकी व्यवस्थापर आधारित है, क्योंकि पर अपर ज्ञान होनेसे। जैसे रूपमें पर अपरका ज्ञान होता है। गहरा नीला है यह पर नील है, उत्कृष्ट नील है, हल्का नील है यह अपर नील है, यह जघन्य नील है, तो देखिये! गुणोंमें भी पर अपरका व्यवहार हुआ। पर अपरको मानते हो गुण, तो गुणोंमें गुण कैसे रहें। पर अपरको यहाँ कहा है विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट। विप्रकृष्ट मायने दूर रहना, दूर रहना मायने परे रहना। सन्निकृष्ट मायने निकट रहना, निकट मायने उरे रहना। तो जैसे विप्रकृष्ट और पर ये पर्यायवाची शब्द हैं इसी प्रकार सन्निकृष्ट और अपर ये भी तो पर्यायवाची शब्द हैं। पर्यायवाची शब्दोंमें कोई यों कहने लगे कि इसकी बुद्धिकी अपेक्षा वह उत्पन्न हुआ तो हम यों कह बैठेंगे कि किसी चीजके दो नाम हों जैसे पुस्तक और पोथी तो वहाँ कोई यह कह बैठे कि पुस्तक बुद्धिकी अपेक्षा करके पोथी उत्पन्न हुई तो इसका कुछ अर्थ है क्या? जैसे घट और कुम्भ दोनों ही एक कलशके नाम हैं और वहाँ कोई यह कह बैठे कि घट बुद्धिकी अपेक्षा करके कुम्भ उत्पन्न हुआ तो क्या यह कोई ढंगकी बात हुई? पर्यायवाची शब्द हैं दोनों। उनमें एककी अपेक्षामें यह दूसरा उत्पन्न हुआ यह नहीं कहा जा सकता। और, पर्याय शब्दके भेदसे अर्थ भी न्यारा-न्यारा नहीं बन सकता। तो इसी तरह यों कहना विप्रकृष्ट बुद्धिसे पर व सन्निकृष्ट बुद्धिसे अपरकी उत्पत्ति होती है बेकार है। जितना भी पर अपरका व्यवहार होता है वह कल्पनासे होता है, पदार्थोंकी अवस्थिति देखकर होता है। कोई इसका बनाने वाला अलग गुण हो, ऐसी बात नहीं है।

गुणत्वकी मीमांसा - गुण वास्तवमें नाम किसका है? गुण नाम है पदार्थमें ही रहने वाली अभिन्न शक्तियोंका। जैसे अग्नि है, अग्नि तो जो है सो है, एक है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अखण्ड है। जैसी है तैसी ही है अब उसमें हम विशेषता ढूंढते हैं कि इसमें जलानेकी शक्ति है, प्रकाशकी शक्ति है, चोरोंको बुरा लगनेकी शक्ति है, साहूकारोंको भला लगने की शक्ति है, तो ऐसी अनेक बातें जितना सोचते जावो उतनी ही उसमें शक्तियाँ मानते जावो। आत्मामें ज्ञान शक्ति है। आत्मा सदा अकेला रहता है, तो आत्मामें ज्ञान ही सदाकाल है। तो शक्तियाँ यों हँसी खेल नही हो गयी कि अनित्य भी चीज है, नष्ट होने वाली भी है और है भी नही है कुछ और हउवाकी तरह केवल कल्पना भर है। और, सभी अटपट कुछ गुण गुण मान लिये जायें, संख्या भी गुण है, संयोग भी गुण हैं, अलग हटना भी गुण है, परे रहना भी गुण है, उरे रहना भी गुण है, ऐसा गुणका सस्ता भाव बना लेना यह कोई विवेककी बात नही है। सोचना चाहिये कि पदार्थ असलमें होता क्या है और किस तरहका है। विशेषवादमें गुणको ऐसा ही स्वतंत्र मान लिया गया जैसे कि द्रव्य स्वतंत्र है। गुणका स्वरूप गुणमें है, द्रव्यका स्वरूप द्रव्यमें है, भिन्न–भिन्न चीजें हैं। समवाय सम्बन्ध जब उन दोमें लगता है तो वे गुणी कहलाते हैं। आत्मा अलग पदार्थ, ज्ञान अलग पदार्थ। ज्ञानको वे बुद्धि शब्दसे कहते हैं। अब आत्मा और बुद्धिमें समवाय सम्बन्ध हो गया तब आत्मा यहाँ जानकार बना। बुद्धिके सम्बन्धके बिना आत्मा जानकार हो ही नही सकता। यों ऐसे स्वतंत्र- स्वतंत्र द्रव्य, गुण, पदार्थोंको मानना वह वस्तुगत् बात नही है। कोई भी वस्तु है, एक है वह एक ही है। भले ही आधुनिक विज्ञान परम्परामें शक्तिका आधारभूत द्रव्यका तो पता पाड़ नही पाये, क्योंकि वह है अत्यन्त सूक्ष्म और शक्तियोंका प्रयोग चल रहा है तो प्रयोगके द्वारा शक्तियोंका अनुमान व्यवस्थित बन रहा है, तो वहाँ द्रव्यके बिना भी शक्तियाँ मान लेते हैं लेकिन कहीं भी यह बात नही हो सकती कि शक्तिका आधारभूत शक्तिमान कुछ न हो और शक्तियाँ हों।

शक्तियोंका अनुमान—शक्तियोंका तो ऐसा भी कुछ हिसाब है कि जैसे जैसे पदार्थ छोटा होता जायगा शक्ति उसमें उतनी गुणी बढ़ती जायगी। जैसे एक मोटे रूपमें मानलो कि जो लड़का जितना अधिक मोटा होगा वह उतना ही कम दौड़ पायगा। तो उसमें शक्तिकी हीनता देखी गई। और, जो बालक जितना इकहरा मिलेगा वह उतना ही ज्यादह दौड़ लगायेगा। यह केवल एक मोटा दृष्टान्त दे रहे हैं। पदार्थोंमें जो पदार्थ जितना अधिक वजनदार होगा उसकी गति कम होगी और जो पदार्थ जितना हल्का होगा उसकी गति तीव्र होगी। स्कंधोंमें जो स्कंध चाक्षुष इतने बड़े हैं कि आँखों दिखते हैं उनमें गति तीव्र नहीं हो सकती। और जो स्कंध अचाक्षुष हो जाते हैं, आँखों नहीं दिखते हैं उनकी गति तीव्र हो जाती है। अचाक्षुष स्कंधोंमें ही आधुनिक वैज्ञानिक स्वतंत्र भिन्न केवल शक्तिकी कल्पना करते हैं और जब वे अचाक्षुष स्कंध और भी हल्के बन गए, बिखर बिखरकर परमाणुमात्र रह गए तो वे बहुत ही तीव्रगतिसे गमन करते हैं। वीतराग ऋषी संतोंने अपने योग बल से बुद्धिसे परमाणुके विषयमें बताया है कि परमाणु एक समयमें १४ राजू तक गमन

http://sahjanandvarnishastra.org/

करता है। तब उन सब व्यवस्थाओंमें परत्व अपरत्वकी बात ढूंढ़ना, यह सब उन पदार्थोंके गुणोंको ही निरख करके बताया जायगा। उन पदार्थोंसे अलग कोई परत्व अपरत्व नामका गुण हो और उसके कारण फिर इसमें पर अपर व्यवहारकी व्यवस्था बननी हो यह बात युक्त नहीं बैठती। तो गुण नाम है अभिन्न वस्तुमें शक्तिभेदकी कल्पना करना। एक वस्तु है उसकी करतूत देखकर उनका कार्य निरखकर। परिणतियाँ देखकर उनमें शक्तिकी कल्पना करना इसमें यह भी शक्ति है, इसमें वह भी शक्ति है। वे सब शक्तियां गुण कहलाती हैं। गुण अनित्य नही हुआ करते। चाहे वह शक्ति अपने अनुरूप काम न भी करे तो उसने चलो प्रतिरूप काम किया। किसी न किसी अवस्थामें शक्ति रही और शक्तिका अभाव नहीं हो सकता तो परत्व अपरत्व व्यहार अनित्य होनेसे गुण नहीं।

गुण कर्म सामान्य आदिमें परत्व अपरत्व व्यवहार होनेसे परत्व अपरत्वकी गुणरूपताका निराकरण—परत्व अपरत्व व्यवहार केवल द्रव्यमें रहता सो बात नही, अतएव गुण नही है। पर अपरपन द्रव्यमें भी लग गए तो जो द्रव्यके अतिरिक्त अन्यमें लगा करें वे गुण कैसे हो सकते हैं? बताया गया है कि सामान्य दो प्रकार का होता है—परसामान्य और अपर सामान्य। जिससे और आगे बड़ा कोई सामान्य न मिले उसे तो पर सामान्य कहते हैं। जैसे कह दिया पदार्थ, लो इसमें सब आ गए, कोई नही छूटा। अब इससे आगे और कौन सा शब्द लोगे कि पदार्थ और उसके अतिरिक्त और कुछ भी आ जाय? कोई शब्द नही है। अब उसके भेद करना. जैसे विशेष वादमें भेद किया है पदार्थ ६ तरहके हैं-द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। यों भेद करके अब उन पदार्थोंमेंसे एकको पकड़ लेना जैसे कहा द्रव्य, तो कुछ आया, यह द्रव्य भी सामान्य बन गया, क्योंकि द्रव्य अब ९ प्रकारके हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। तो अब उन भेदोंकी अपेक्षासे तो द्रव्य सामान्य रहा लेकिन पदार्थोंके मुकाबलेमें यह सामान्य विशेष रहा। तो द्रव्य सामान्य का परिमाण छोटा रहा और परसामान्यका परिमाण बड़ा रहा। तो देखो—महान आधार बुद्धिकी अपेक्षासे तो परत्वकी उत्पत्ति हुई और अल्प आधारकी बुद्धिकी अपेक्षासे अपरत्वकी उत्पत्ति हुई तो उसमें भी क्यों नहीं मान लेते कि गुणके कारण सामान्यमें परत्व और अपरत्वका व्यवहार हुआ है।

परत्व अपरत्वको गुण माननेपर मध्यत्व आदिके प्रसंगमें गुणसंख्या का विघात—यह गुणोंकी मीमांसा चल रही है। वैशेषिक यह कह रहा है कि हमारी बुद्धिमें जो कुछ ऐसा आया कि रहता तो हो द्रव्यमें मगर द्रव्यका लक्षण उसमें न हो तो वह गुण कहलाता है। इस आधार पर २४ गुण बताये जा रहे हैं। उनमें यह ११वां और १२वां परत्व और अपरत्व है, उसकी चर्चा है। ये परत्व और अपरत्व भी गुण नहीं और परत्व और अपरत्व गुण मान लिए जायें तो देखो! एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुण मध्यत्व भी मान लेना चाहिए कि यह चीज परे है, वह जीना परे है, यह बेन्च उरे है, लेकिन यह खम्भा बीचमें है। तो जब तुमने एक परत्व गुणके कारण परेका व्यवहार माना, अपरत्व गुणके कारण उरेका व्यवहार माना तो यह बीचमें है यह किस गुणके कारण व्यवहार हुआ ? उसका एक गुण मान लो मध्यत्व। देखिये ! दिशाकी अपेक्षा भी मध्यका व्यवहार चलता है। जैसे किसीके तीन लड़के हैं तो एक है। एक छोटा है और एक मध्यका है। तो जब मध्यपनेका व्यवहार हो रहा है तो इसका आधारभूत, कारणभूत, वह तो कोई गुण मान लेना चाहिए। तो कोई व्यवस्था न बनना यह परत्व अपरत्व गुणके कारण नहीं है किन्तु चीज ही यह इस प्रकार अवस्थित है। कोई चीज दूर देशमें है तो उसे कहते हैं पर चीज, निकट देशमें है तो उसे कहते हैं अपर चीज। यह कोई गुण नही कहलाता।

गुणपरिचयका महत्त्व—गुणपर यदि दृष्टि जाय तो इस आत्माको निर्विकल्प दशाकी निकटता आ सकती है। गुण तो शुद्ध द्रव्यकी भाँति है। ऐसा शुद्ध तत्त्व है कि जिसकी यदि परख बन जाय तो आत्मा तो निहाल हो सकता है। जैसे सही आत्मद्रव्य क्या ? जिसमें दूसरेका कुछ भी संयोग न जाय ऐसा शुद्ध आत्मा कैसा होता होगा जरा निगाहमें तो डालो। यहां हम जिसको कहते हैं कि यह जीव है, यह आत्मा है। थोड़े ही जीव है। वह नही है आत्मा, वह तो अनेक पिण्डोंका समूह है। शरीर है। जीव है। कर्म हैं, इतनोंका पिण्ड़ोला है। जेसे बिस्तरमें तीन चीजें हैं – दरी गद्दा और रजाई। इद तीन चीजोंका बण्डल जैसे बिस्तर है इसी तरह जीव, कर्म और शरीर इन तीनका पिण्ड यह दिखने वाला शरीरो जीव है। और भी देखिये – जैसे अंग्रेजीमें होता है —Good, better, best इसी तरह यहाँ हिन्दीमें है – बिष बिषतर, बिसतम। जिस विषके खानेसे मरण हो जाता है उसका नाम है विष, और उससे भी अधिक बलिष्ठ चीज है बिषतर। यह बिस्तर उन ही लोगोंके पास पाया जायगा जो मोहमें है, घर गृहस्थीमें हैं जैसे यात्रा करते हुएमें आपको किसीके पास बिस्तर दिख जाय तो समझो कि यह मनुष्य घर गृहस्थी वाला है, परिग्रही है परिवार वाला है। मोहमें फंसा हैं। तो घरगृहस्थीमें मोह ममतामें रहनेपर दृष्टिमें आता है कि यह है बिस्तर। उसका प्रतीक है वह पिण्डोला इसलिये उसका नाम भी बिस्तर रख दिया गया। तो जो प्राणी यहाँ नजर आ रहे है ये प्राणी तो बिस्तर हैं। इनका परिचय, इनका स्नेह इनका अनुराग, इनका अपनाना ये सारे बिस्तर हैं। विषसे कम नहीं हैं। विषसे अधिक हैं। ये शुद्ध आत्मा नहीं हैं।

शुद्ध आत्मत्व अथवा शुद्ध आत्मशक्तिके बोधका प्रलय – शुद्ध जीव द्रव्य क्या है ! यह अन्तर्दृष्टिसे ही निहारा जायगा। इस शरीरसे परे, इन विकल्पों से परे जो एक शुद्ध प्रतिभासमात्र तत्त्व है वह है आत्मद्रव्य। अब कोई उस शुद्ध आत्मस्वरूप तक अपनी दृष्टि लगाये तो उसके यहां वहांके विकल्प, कल्पनायें कहाँ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ठहर सकती है ? इसी प्रकार उस आत्माकी किसी एक शक्तिपर भी कोई दृष्टि दौड़ाये आत्मामें ज्ञान शक्ति है तो ज्ञान शक्ति शुद्ध शक्तिका नाम है। उस ज्ञानमें जो कुछ परिणमन हो रहे हैं वे ज्ञानशक्ति नहीं। जैसे हम भींट जान रहे हैं तो भींटका जो जानन बन रहा है यह ज्ञानशक्ति नहीं। शक्ति नहीं। शक्ति तो शुद्ध होती है। भींटका जानन अनित्य है और यह परसम्बन्ध वाला है। भींटका जानना, इस जाननेमें भींट विषयभूत हुआ, पर शक्ति शुद्ध होती है। उसका विषयभूत कोई पदार्थ नहीं होता। और वह शाश्वत रहता है। ऐसी जरा ज्ञानशक्तिकी ओर दृष्टि तो लाइये। जैसे किसी कठिन कामको करनेके लिये हाथ पैर नसें ये सब चरमरा जाते हैं इसी तरह आत्माकी किसी भी एक शुद्ध शक्तिपर दृष्टि ले जानेके लिये ये विकल्प, कल्पनायें, चिन्ता, शोक आदि सब चरमरा जायेंगे। और जब तक ये सब जीवित रहते हैं तब तक आत्माकी शुद्ध शक्तिका उपयोग नहीं किया जा सकता। तो गुण तो इतना श्रेष्ठ तत्त्व है। अब उसकी यहाँ मोटी दृष्टि देकर सूक्ष्मताकी कला खेली जा रही है विशेषवादमें कि परेका ज्ञान हो यह भी गुण, उरेका ज्ञान हो यह भी गुण। और गुण नाम है शक्तिका। और कामके लिये बड़ा आधारभूत तत्त्व हुआ करता है। ऐसे अटपट गुणोंकी कल्पना करनेसे कोई हितकी सिद्धि या पदार्थोंमें किसी ऐसे स्वरूपकी सिद्धि कि जिसको जाननेके कारण आत्माका हित हो जाय, इस गुण विस्तारसे कोई सम्बन्ध नहीं। तो यह परत्व अपरत्व व्यवहार भी परत्व अपरत्व गुणके कारण नहीं किन्तु अपेक्षा बुद्धिके कारण हो रहा है। लम्बे कालकी बातको पर कहा गया और निकट कालकी बातको अपर कहा गया। लम्बे क्षेत्रकी बातको पर कहा गया, निकट क्षेत्रकी बातको अपर कहा गया। यों परत्व अपरत्व नामका गुण कोई वास्तविक गुण नहीं है।

विशेषपादाभिमत बुद्धि गुणकी मीमांसा—अब शंकाकार कहता है कि एक बुद्धि नामका भी गुण है। जिसका समवाय सम्बन्ध आत्मामें होता है। बुद्धि अनित्य होती है। आत्मा नित्य होता है और इसी कारण एक साथ ज्ञान चलते रहने का दोष नहीं आता, क्योंकि आत्मा तो चित्स्वरूप है। आत्मासे तो ज्ञान होता नहीं। आत्मामें ज्ञानका स्वभाव है नहीं। वह तो मात्र चैतन्यस्वरूप है। आत्मामें जो ज्ञान बनता है सो बुद्धिके सम्बन्धसे बनता है और जब तक यह बुद्धि इस जीवके साथ लगी है तब तक इसको यों व्यक्त ज्ञान रहता है और संसारमें इसका परिभ्रमण चलता है। जिस कालमें भेद विज्ञान हो जाय कि मैं तो केवल चित्स्वरूप हूं, बुद्धि मुझसे पृथक है और उस बुद्धि विकल्पसे दूर हो जाय तो इस जीवको मोक्ष होता है। इस तरह शंकाकार बुद्धि गुणका सद्भाव कह रहा है और बुद्धिको अनित्य कह रहा है। समाधानमें उनसे पूछा जाय कि बुद्धि आत्मासे सर्वथा भिन्न है अथवा अभिन्न है ! यदि बुद्धि आत्मासे सर्वथा जुदी है तब फिर इसका कारण बतलावो कि बुद्धिका सम्बन्ध आत्मासे ही तो होता है और आकाश, काल, दिशा इनमें नहीं होता, इसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण क्या है। जो अत्यन्त भिन्न चीज है जैसे पुद्गल और जीव भिन्न हैं तो जीव और पुद्गलका कभी समवाय हो ही नहीं सकता। द्रव्य द्रव्य सब परस्पर अत्यन्त भिन्न माना है तो द्रव्य द्रव्योंका कभी भी तादात्म्यरूप सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। तो जब बुद्धि आत्मासे जुदी है तो बुद्धिका आत्मामें सम्बन्ध कैसा ? और, यदि अभिन्न है तो आत्मा ही बुद्धयात्मक कहलाया। बुद्धि अलगसे गुण पदार्थ हो। आत्मा ही बुद्धयात्मक कहलाया। बुद्धि अलगसे गुण पदार्थ हो। आत्मद्रव्य अलगसे पदार्थ हो और फिर आत्मामें बुद्धिका समवाय किया जाता हो यह बात तो न रही।

बुद्धि गुणके सम्बन्धमें निर्णयन—अब इस बुद्धिमें तथ्यभूत क्या है सो सुनो। आत्मा चित्स्वरूप है यह तो विशेषवादी भी मानता है और स्याद्वादियोंको भी इन्कार नहीं है। बराबर आत्मा चैतन्यस्वरूप है। मगर चैतन्यका अर्थ क्या है ? चैतन्यका अर्थ है चेतना प्रतिभासना। आत्माको ब्रह्मवादी प्रतिभासस्वरूप भी कहते हैं और ब्रह्मवादी और विशेषवादी ये हैं तो एक ही प्रकारके लोग, पर मंतव्योंसे कुछ अन्तर आ गया है। तो मतलब यह है कि आत्मा चैतन्यस्वरूप है। इसका अर्थ क्या हुआ कि आत्मा प्रतिभासस्वरूप है। जब आत्मा प्रतिभासस्वरूप है तो प्रतिभास दो प्रकारके होंगे—एक सामान्यप्रतिभास एक विशेषप्रतिभास। कुछ भी बात हो, सामान्य विशेषताका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। मनुष्य है तो दो प्रकारसे देखो उसे—सामान्य मनुष्य और विशेष मनुष्य। आनन्द है उसे भी दो प्रकारसे देखो—सामान्य आनन्द विशेष आनन्द। कुछ भी बात हो, उसके भेदाभेदरूप हैं विकासपर दृष्टि दें तो विशेष नजर आयगा। और सामान्य वर्तनापर दृष्टि दो तो सामान्य दृष्टिगत होगा। अब यह प्रतिभास यह चैतन्यसामान्यरूप भी हुआ, विशेषरूप भी हुआ। सामान्यरूप चैतन्यका नाम है दर्शन और विशेष चैतन्यका नाम है ज्ञान। तो जब चैतन्य आत्माका स्वरूप है, गुण नहीं, आत्माका गुण चैतन्य माना जाय तो ये दो अलग-अलग पदार्थ बन जायेंगे विशेषवादका गुण अलग सत्ता रखने वाला पदार्थ है और द्रव्य अलग सत्ता रखने वाला पदार्थ है। सो चेतनाको गुण तो नहीं कहते हैं। स्वरूप स्वरूपवानमें अभिन्न रहता है। तो जब आत्माका स्वरूप चेतन है और चेतन है सामान्यविशेषात्मक तो यह अर्थ हुआ कि दर्शन ज्ञान भी आत्माका स्वरूप है, गुण नहीं। विशेषवादियोंसे कहा जा रहा है इस कारण दर्शन और ज्ञानमें गुणपनेका निषेध कर रहे हैं। वैसे तो गुण कहा जाय तो कोई अनुचित नहीं। गुण जो है वह पदार्थमें अभेदरूप हुआ करता है। लेकिन जो गुणको और पदार्थको याने द्रव्यको भिन्न-भिन्न मानते उनके लिये कह रहे हैं—जो दर्शन ज्ञान गुण नहीं किन्तु आत्माके स्वरूप हैं। अब जो ज्ञानस्वरूप बना आत्मा, उस ज्ञानस्वरूपका प्रति समयमें नवीन-नवीन अवस्था बनती ही रहती है। तो जो सहज ज्ञानस्वरूप है वह तो है आत्मामें शक्ति शाश्वत और उसका जो विकास है जाननरूप, वह है (ज्ञान पर्याय)। अब आप यह बतलावो कि आपकी बुद्धि किसका संकेत करती है ? क्या सहज ज्ञान

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूपका नाम बुद्धि रख रहे हो या ज्ञानपरिणमनका नाम बुद्धि रख रहे हो ? यदि सहज ज्ञानस्वरूपका नाम बुद्धि रखते हो तो रख लो। नाम बदलकर रखनेसे पदार्थ तो न बदल जायगा। जैसे कोई व्यक्ति है, गृहस्थावस्थामें उसने बहुत अन्याय किया तो साधु अवस्था ग्रहण करनेपर नाम बदल देता है ताकि लोगोंमें हमारा अपमान कम हो जाय। और, वह साधु एक बार नाम बदल चुका और साधुपनेमें ही अन्याय कर बैठा तो फिर वह दूसरा नाम बदल देता। तो यों नाम बदलते जावो पर नाम बदलनेसे आदर प्रकृति मनुष्य तो न बदल जायगा। तो ऐसे ही उस सहज ज्ञानस्वरूपका नाम बुद्धि रखलो तो उससे कहीं अर्थ न बदल जायगा। सो बुद्धि आत्माका स्वरूप है, उसका निषेध नही किया जा सकता। यदि ज्ञानपरिणमनका नाम बुद्धि रखते हो—खम्भा जाना, भींट जाना, घर जाना, दूकान जाना, इस तरह जो हमारी नाना जानकारियां चल रहीं हैं इनका नाम बुद्धि है। ऐसा यदि कहते हो तो अर्थ हुआ कि बुद्धि परिणमन। और वह आत्माके ज्ञानस्वरूपका परिणमन है। इसमें भी कोई आपत्तिकी बात नहीं है। आपत्ति तो केवल इतनी ही है कि बुद्धिका गुण माना जाय और उसकी सत्ता न्यारी मानी जाय, आत्माको द्रव्य माना जाया, उसका सत्त्व न्यारा माना जाय और फिर आत्मामें बुद्धिका समवाय करके आत्माका काम किया जाय तो इसमें आपत्ति है। तो विशेषवादियों द्वारा कल्पित जैसा बुद्धिका स्वरूप है वैसा बुद्धि नामका गुण पदार्थ सिद्ध नहीं होता।

शंकाकार द्वारा सुख दुख नामक गुणके सद्भावका कथन—शंकाकार कहता है कि एक सुख नामका भी तो गुण है और दुःख नामका भी एक गुण है। सुख और दुःख जो इस जीवको लगे हैं वे दोनों ही गुण हैं। यहाँ गुण शब्दका यह अर्थ नहीं लेना कि जो अच्छी बात हो उसे गुण कहा हो और जो बुरी बात हो उसे अवगुण कहा हो। अवगुण भी गुण ही है और गुण सो गुण है ही। जैसे नाम और बदनाम। कोई लोग कहते कि अगर मैं बदनाम हुआ तो अच्छा ही तो रहा। नाम तो लगा है साथमें। यहां गुणका मतलब अच्छी बातसे नहीं किन्तु एक जो निर्गुण हो और द्रव्यके आश्रय रहता हो, ऐसा जो कुछ भी तत्त्व है उसका नाम गुण रखा गया है। तो आत्मामें सुख गुण भी है और दुःख गुण भी है। जब सुख गुणका सम्बन्ध होता है आत्मामें तब आत्मा सुखका अनुभव करता है जब दुख गुणका सम्बन्ध होता है तब आत्मा दुखका अनुभव करता है। यह सिद्धान्तानुसार कथित २४ गुणोंमेंसे १३वाँ और १४वाँ गुण है।

सुख दुःखके गुणत्वकी शङ्काका समाधान—समाधानमें कहते हैं कि पहिले सुख और दुःखका अर्थ ही तो बताओ कि इसका मतलब क्या है ? सुख किसे कहते हैं ? सु के मायने सुहावना और ख के मायने इन्द्रिय। जो इन्द्रियोंको सुहावना लगे उसे सुख कहते हैं। और इन्द्रियोंको जो असुहावना लगे उसे दुःख कहते हैं। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सुहावना लगना, असुहावना लगना यह किसकी विशेषता है ? है आत्माकी विशेषता। सुहावना लगनेका, असुहावना लगनेका प्रभाव किसपर पड़ता है ? आत्मापर पड़ता है सो है तो सुख दुःखके आधार आत्मा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन वे सुख दुःख हैं क्या ? कि आत्माका जो एक आनन्द स्वरूप है उस आनन्द स्वरूपका विभाव परिणमन है। ये सुख दुःख कोई अलग गुण पदार्थ हों और उनका जब समवाय सम्बन्ध बने आत्मामें तब आत्मामें सुख दुख हों ऐसी बात नहीं है, किन्तु यह आत्मा ही अपने ज्ञानके अनुसार आनन्द गुणका परिणमन किया करता है। सो जब ज्ञानमें भूल है तब ज्ञान ज्ञानस्वरूपसे हटकर किसी अज्ञान रूपमें लग रहा है उस समय आनन्द गुण का, आनन्द स्वरूपका सुख एवं दुःखरूप विकार परिणमन होता है। सुख दुःख विशेषवादियोंने अनित्य कहा तो इसमें कुछ सन्देह नहीं कि सुख दुख अनित्य ही है, क्योंकि अनित्य तो कर्म, क्रिया, परिणति आदिक कहलाते हैं, गुण नहीं। तब सुख दुःखका आधारभूत जो आत्मामें आनन्दस्वरूप है वह तो है गुण, शक्तिस्वरूप और सुख दुःख हैं आनन्दस्वरूपका विकृत परिणमन ! स्वरूप और गुणमें अन्तर कुछ नहीं, अन्तर केवल यही है कि जब अभेद दृष्टिसे द्रव्यको निरखते हैं तो वहाँ जो निरखा गया उसे कहते हैं स्वरूप और भेद दृष्टिसे जब सत्यको निरखते हैं वहाँ जो निरखे जाते हैं उन्हें कहते हैं गुण। स्वरूपभेद गुण है। गुणोंका अभेदस्वरूप है, सुख दुःख नामके गुण अलग हों ऐसी बात नहीं है। जिस कालमें आत्मा भेद विज्ञान करता है उस भेद विज्ञानसे यह जो अपने अभेद स्वरूपकी ओर आता है। आत्माका अभेद स्वरूप है ज्ञानानन्द-स्वरूप। उसमें उपयोग जमनेसे, उसमें रमण होनेसे आत्माके सुख दुःख विकार आदि दूर हो जाते हैं और आनन्द स्वरूपका शुद्ध आनन्द विकास प्रकट हो जाता है।

हम आप सबकी इस नर जीवनमें बड़ी जिम्मेदारीका स्मरण—हम आप सब बन्धुवोंने यह मनुष्यभव पाया तो बड़ी जिम्मेदारीसे सुननेकी बात है, ऐसा अमूल्य नर जीवन बार बार नहीं प्राप्त हो सकता। संसार में देखिये—स्थावर, कीट, पतिंगे आदि ये कितनी ही तरहके दुर्गति वाले प्राणी हैं, ये प्राणी हमारी जातिके ही जीव हैं, और, इस इस तरहकी परिणतियाँ हम आपने अनेक बार प्राप्त की है। क्या बीती होगी उस समय और अब भी आगे इस नर जीवनको यदि यों ही मुफ्त सा समझ कर परिग्रहकी तृष्णामें, कुटुम्बियोंके स्नेहमें, विषयोंके उपभोगमें और असार व्यर्थ अनर्थकी कीर्तिकी चाहमें यदि इस उपभोगको फँसाया तो जिन दुर्गतियोंको भोगकर आज आये हैं मनुष्यभवमें उन्हीं दुर्गतियोंमें फिर जाना होगा। वैसे ही मोटे रूपसे समझ लीजिये कि इस नर जीवनको हम धीरे-धीरे समाप्त कर रहे हैं, मरणकी ओर जा रहे हैं, जितना रहा शेष जीवन है वह भी बहुत ही जल्दी निकल जाने वाला है। मरण होगा, मरणके बाद फिर आपका क्या रहा यहाँ ? घर, कुटुम्ब, पैसा कुछ भी रहे तो बतलावो ! जो पर दृष्टि करके विकल्प बनाकर यहाँ संस्कार बना लिया मलिनता बना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लिया, वे संस्कार तो साथ जायेंगे ना, दुःखी करनेके लिए ? तो जैसे ये घर, धन वैभव कुटुम्ब परिजन आदि छूटते हैं वैसे ही ये संस्कार भी छूट जायेंगे क्या ? अरे ये तो न छूटेंगे। जीवनमें जो पाप कमाया है वे संस्कार तो इस जीवको दुःखी करनेके लिए साथ जायेंगे। तब समझो अपनी कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। उन गाय बछड़ों जैसा स्वच्छन्दभरा प्रवर्तन मत करो। खूँटेमें बँधे हैं तो बेचैन हैं, जरा सा गिरवाँ टूटा कि भाग करके जहाँ मन चाहा वहाँ भाग जाते हैं। सो ऐसे ही धर्मका बन्धन तोड़कर, ज्ञान दृष्टिका नियंत्रण तोड़कर विषयोंमें, चाहोंमें, दूकानमें, परिजनमें, जहाँ चाहें वहाँ मनको खूब लगायें, यह प्रवृत्ति तो इस जीवकी बरबादीका ही कारण है। इसका फल कोई दूसरा भोगने न आयगा। स्वयंके द्वारा किये गए कर्मोंका फल स्वयंको भोगना पड़ेगा।

आत्मगुणकी सम्हालमें अलौकिक आत्म वैभवका लाभ—अहो, अब तक बरबादीका ही उपाय किया। कर्मोंका बोझ बढ़ाया, लेकिन खेद मचानेकी कुछ बात नहीं है। अनगिनते भवोंके भी बाँधे हुए तीव्रसे भी तीव्र पाप यदि अपनी ज्ञान दृष्टिको सम्हाललें और अपने आपके स्वरूपका अनुभव करें तो वे सारेके सारे पाप कर्म कुछ ही क्षणोंमें खिराये जा सकते हैं। बल इतना बड़ा है हम आप सबमें। क्योंकि, आखिर हैं क्या ? एक भ्रमके खम्बेपर यह सारी विडम्बना सवार है। दुर्गतियोंमें जन्म मरण करना, चिन्ता, भय, शोक, शल्य आदिक भावोंसे अपनेको दुःखी करना, ये सारीकी सारी विडम्बनायें भ्रमके खम्बेपर आ पड़ी हुई हैं। आधार कुछ नहीं है। भ्रम है। एक मान्यता ही उल्टी बना लेनेका यह सब फल है। मान्यता तो मान्यता ही है। कुछ वहाँ रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं पड़े, वहाँ कोई पहाड़ पृथ्वी नहीं अड़ी कि जिसको फेंककर निकालनेमें देर लगे और बड़ी कठिनाई पड़े। अरे मान्यता तो मान्यता ही है। अब तक रही परमें आपा माननेकी मान्यता, परसे सुख दुःख समझनेकी मान्यता। रही तो मान्यता ही, कल्पना ही। उस कल्पनाको सम्यग्ज्ञानके बलसे दूर करके निरखें कि ज्ञानानन्दघन यह स्वयं आत्म–तत्त्व है। बस हममें इसकी ही चीज, इसका ही ज्ञान, इसका ही उपयोग समाये रहे, बस कृतार्थता जग गयी। आत्माका उद्धार होना कोई कठिन बात नहीं है लेकिन कोई उसके धोरे ही न आये, आत्माकी चर्चाके निकट ही न आये, यह काम बड़ा बोझ जैसा लगे और रागद्वेषादिकके कार्य करना बड़ा आसान मालूम दे, तो ठीक है। आज पुण्यका उदय मिला है ना, घर है घर वाली है, बच्चे हैं। सब कुछ मिला है ना, और वे सब आपके हैं, आपका उनपर अधिकार है व्यवहारसे। तहसीलमें, नगरपालिकामें आपकी जायदाद आपके नाम चढ़ी हुई है। आप बे फिकर होकर सब मेरा ही तो ठाठ है, इसमें किसी दूसरेका है क्या ? यों स्वच्छन्द होकर उसके रागद्वेषमें लग रहे, यह काम आपको बड़ा आसान लग रहा है और यह अपने आत्माकी बात, इस धर्मकी बात, जिससे अपना उद्धार होगा, संसारके संकट सदाके लिए छूटेंगे, उस कामको करनेके लिए, उसकी बात सुननेके लिए आपको बड़ी कठिनाई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मालूम हो रही है। हम ही आत्माकी बातोंको सुनने न दें तो होगा क्या, अथवा अब थोड़ा ही तो समय रह गया, सुन लिया जाय यों उस आत्महितके कामके लिए बड़ी विवशतायें मालूम हो रही हैं और रागद्वेषादिकके कार्योंके लिए बड़ी स्वाधीनता मालूम हो रही है। तो इन गैर जिम्मेदारीकी प्रवृत्तियोंको छोड़ना होगा और जब इस ज्ञान की ओर आयेंगे और किसी भी समय ज्ञानानन्दघन आत्मतत्त्वकी झलक होने लगेगी तब आप स्वयं स्वयं तृप्त और सन्तुष्ट होगे और जानेंगे कि तीन, लोककी सम्पदा इन्द्र सरीखे भोग, काककीटसम गिनत हैं सम्यग्दृष्टि लोग यह बात विल्कुल सत्य है, जिस वैभवको, जिस लाखोंकी मायाको लोगोंने बड़ी रुचिसे पकड़ रखी है वह माया सम्यग्दृष्टि पुरुषको काककीटकी तरह ध्यानमें आ जायगी आत्म वैभवके पानेपर उस वैभव मूल्य कोई आँक सकता है क्या ? तब उस ज्ञानस्वरूपकी सिद्धि होनेपर उसमें रमण होनेपर ये सुख दुःख नामके विकार इसके तुरन्त दूर हो जाते हैं। और ठीक ही है। मोक्ष अवस्थामें न सुख रहता और न दुःख रहता। सुख दुःख ये गुण नहीं हैं, किन्तु आत्माके आनन्दस्वरूपमें भेद दृष्टिसे आनन्दगुणके ये विकृत परिणमन हैं, अतः विशेषवादमें कल्पित सुख दुःख जिस स्वरूपसे माने गए हैं वह सिद्ध नही होता।

शङ्काकार द्वारा इच्छा और द्वेषमें गुणत्वकी सिद्धिका प्रयास—अब शंकाकार कहता है कि इच्छा और द्वेष ये भी तो गुण हैं। राग करना, रम जाना सुहावना लगना, इच्छा करना, प्रतीक्षा करना आदि ये भी तो गुण हैं, द्रव्य तो नही है। इसी प्रकार द्वेष करना, विरोध करना, मात्सर्य रखना यह भी तो गुण है। तब फिर यह कहना कि पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होता है और ऐसे-ऐसे पदार्थ केवल ६ हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। यह कथनी कैसे शोभा पा सकती है ? सब लोगोंको विदित है कि इच्छा और द्वेष खासे प्रचण्ड गुण हैं, और संसारमें यह सारा नाच, ये सारी घटनायें, ये विडम्बनायें, सम्मान अपमान आदि जो जो कुछ है वे इस इच्छा द्वेषके आधारपर ही तो हैं। जो मनुष्य अच्छी इच्छा करता है उसका लोकमें सम्मान होता है और वह भी बड़ा सुखी रहता है। जो द्वेष किया करता है या खोटी इच्छा करता है उसका इस लोकमें अपमान होता है और स्वयं भी दुखी रहा करता है। तो जिस गुणपर सारा कुछ खेल अवलम्बित है इस इच्छा और द्वेष नामके गुणको कैसे भूलते हो ? यह भी गुण है।

इच्छा और द्वेषके गुणत्वकी मान्यताका निराकरण—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि इच्छा और द्वेष इनका क्या अर्थ है ? इच्छा मायने चाह होना। चाहके मायने परकी ओर आकर्षण होना। चाहे चेतनकी चाह हो अथवा अचेतनकी चाह हो, जहाँ चाह है वहाँ परकी ओर खिंचाव है। चाहका अर्थ है परका राग, परकी ओर आकर्षण। और, द्वेष मायने असुहावना लगना, बुरा प्रतीत होना, घृणा करना, आकर्षण न होना, ये तो हैं ही मगर उसके विरुद्ध उतना ही विमुख हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाना। ऐसा जो विकल्प होता है उनका ही नाम द्वेष है। तो अब देखो कि जब तक इच्छा है और द्वेष है तब तक जीवोंकी परिणति इस इस प्रकारकी हो रही है। जब इच्छा और द्वेष न होंगे तब आत्माकी प्रवृत्ति कैसी होगी इसका अंदाज करो। शान्त, गम्भीर, अपने आपमें समायी हुई परिणति होगी। इस प्रकारके परिणमन का नाम है तथ्यका प्रायोगिक रूपसे होना। जिसका नाम रखा गया है चरित्र। तो इच्छा द्वेष जब नहीं है तब शुद्ध चरित्र है और जब इच्छा द्वेष है तब शुद्ध चरित्र नहीं है। तो अब देखिये! मुकाबलेमें दो बातें हो गयी - इच्छा द्वेष और शुद्ध चरित्र, तो जिस शक्तिका परिणमन इच्छारूप हो रहा है तब शुद्ध चरित्ररूप नहीं। जब शुद्ध चारित्ररूप हो रहा है तब इच्छा द्वेष नहीं। इससे यह मानना चाहिये कि चारित्र शक्ति जीवका स्वरूप है और उस स्वरूपमें जब विकार हुआ तब होता है इच्छा और द्वेष। और फिर स्वरूपमें विकार नहीं है, स्वरूप स्वरूपविकासमें चल रहा है तो उस का नाम है शुद्ध चारित्र। इच्छा द्वेष चारित्र नामक स्वरूपके, भेद दृष्टिसे चारित्र नामक गुणके विकार परिणमन हैं। इच्छा, द्वेष स्वयं कोई गुण पदार्थ नहीं हैं कि उनका आत्मामें सम्बन्ध हो तब आत्मा इच्छा और द्वेषका अनुभवन किया करे।

शंकाकार द्वारा प्रयत्न नमक गुणके सद्भावका कथन—शंकाकार कहता है कि एक प्रयत्न नामका गुण है। जीवमें जो चारित्रका उमंग उठता है। प्रयत्न होता है, किसी कार्यके करनेके लिये एक यत्न भीतरमें चलता है जिससे कि प्रगति होती है, आरम्भ बनता है वह है प्रयत्न नामका गुण। तो सब लोग अनुभवमें जानते हैं कि जान लिया, परख लिया, निर्णय कर लिया, पर जब तक प्रयत्न नही किया जाता तब तक वह कार्य सिद्ध नही होता। पानी पीना है। प्यास लगी है मान लो। तो प्यास मिटानेका साधन यह कुवाँ है। इस कुवेंपर डेगची, रस्सी हमेशा रखी रहती है। वहीं छोटे-छोटे डिब्बे भी पड़े रहते हैं। सब कुछ समझ लिया, पर प्रयत्न न किया जाय, उस ओर न जाया जाय, पानी न खींचा जाय, तो प्यास तो नही बुझ सकती। तो इस प्रयत्नका तो बड़ा ही महत्त्व है। सब कुछ प्रयत्नके आधार पर ही ये भली बुरी आदिक बातें चल रही हैं। तो जैसे द्रव्य कोई पदार्थ होते हैं इसी प्रकार प्रयत्न नामका गुण भी एक पदार्थ है। जब उस प्रयत्नका सम्बन्ध होता है आत्मासे तब कुछ ये स्थितियाँ बनती हैं। तो प्रयत्न नामका भी एक गुण पदार्थ है।

प्रयत्नको गुणपदार्थ माननेके विकल्पका निराकरण—अब समाधानमें कहते हैं कि प्रयत्नका अर्थ क्या है? एक मनुष्यने प्रयत्न किया, कुवेंपर जाकर डेगची से पानी खींचकर पानी पिया तो उस मनुष्यने वहाँ किया क्या? प्रयत्न किया। प्रयत्न मायने हस्तादिककी क्रियायें। तो प्रयत्नका अर्थ क्रिया हुई। प्रथम तो इसीसे बात कट जाती है कि प्रयत्न कोई गुण नही है, किन्तु वह तो क्रिया है, कर्म है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विशेषवादमें कर्म नामका भी पदार्थ माना है। तो प्रयत्न गुण न रहा। और, फिर और भी सुनिये—प्रयत्न आत्मामें हुआ। क्या प्रयत्न हुआ ? आत्माने कोई बात जानी समझी। निर्णयकी और उस उपायका संकल्प किया। अब इसके बाद आत्म प्रदेशमें जो योग हुआ, परिस्पंद हुआ वह उसका प्रयत्न कहलाया। तो वह योग भी क्या है ? आत्माकी क्रिया है, प्रयत्न है। तो प्रयत्न नामका कोई गुण अलग हो और उसका फिर आत्मामें सम्बन्ध हो तो आत्मा प्रयत्न करे या जिसमें सम्बन्ध हो वह प्रयत्न करे ऐसा प्रयत्न नामका कोई गुण नहीं है।

बुद्धि सुख दुख इच्छा द्वेष व प्रयत्नके कात्मगुणत्वकी असिद्धि—अब जरा इन ६ गुणोंके सम्बंधमें एकचित बात सुनिये–बुद्धि सुख,दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, जिनका वर्णन अभी चल रहा है, जिनका आत्मासे सम्बंध बताया जाता कि इन ६ गुणोंका सम्बंध आत्मासे है और फिर उसका हम आप लोग प्रयोग करते है तो यह तो बतलाओ कि आत्मामें जो सुख दु:ख इच्छा द्वेष प्रयत्न ये ५ गुण हैं–ये ५ गुण बुद्धिरूप हैं या अबुद्धिरूप, ज्ञानात्मक हैं या अज्ञानात्मक ? यदि कहो कि अबुद्धिरूप है, ज्ञानरहित है तो जैसे ज्ञानरहित है तो जैसे ज्ञानरहित रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं तो वे कहीं बुद्धि आत्माके गुण तो नहीं बन जाते। पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श पाया जा रहा तो ये रूपादिक क्या आत्माके गुण हो जाते हैं ? नहीं। क्यों नहीं होते कि वे अचेतन है, बुद्धिरहित हैं। अब बुद्धिरहित हैं आत्माके सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, तो ये पाँचोंके पाँचों गुण हो ही नहीं सकते, क्योंकि बुद्धिरहित हैं और यदि कहो कि ये पाँचों भी बुद्धयात्मक है तो ठीक है। इन पांचोंका नाम बुद्धि पड़ गया, ये पाँचों कुछ नहीं रहे। जब ये पाँचों बुद्धिरूप हो गए तो इनसे भिन्न ये सुख दुख: आदिक कुछ भी न रहे। यदि कहो कि कुछ विशेषता है, कुछ इसके स्वरूपका भेद है, उस विशेष को लेकर ये सुख दु:ख इच्छा, द्वेष, प्रयत्न बुद्धयात्मक हैं तो भी उनका भेद रूपसे कथन चलता है। जैसे ज्ञान दर्शन चारित्र आदिक गुण स्याद्वादियोंके ये आत्मासे भिन्न हैं तो संख्या, गुण, आत्मा, प्रयोजन आदिककी वजहसे उनमें भेद माना जाता है। और भेदरूपसे शास्त्रोंमें वर्णन है। इसी प्रकार कुछ विशेषोंको लेकर इन सुख दु:ख आदिकमें और बुद्धिमें भेदसे कथन चलता है। तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो उनके अभिधानमें अभिधामें, अभिधेयमें भी भेदका अभिधान होना चाहिये। कुछ विशेषता पाकर उनमें भेदसे कथन करना हो तो वाचक जो शब्द हैं उन शब्दोंमें भी भेदसे कथन करो। और, फिर कुछ भी विशेष पाकर अत्यन्त भेद माननेकी यदि आदत बना ली गई तब तो इसमें बड़े दोष आयेंगे। इससे ज्यादह बात बढ़ानेसे क्या लाभ है ? तथ्यपर आइये ये सुख दु:ख इच्छा द्वेष प्रयत्न आदि जिस जिस प्रकारसे वैशेषिक सिद्धान्तमें माना है उनकी सिद्धि नहीं होती है। ये सब आत्माके किसी गुणके परिणमन हैं और बुद्धि भी आत्माके सहज ज्ञानस्वरूपका परिणमन है। ये स्वतन्त्र भिन्न गुण पदार्थ नहीं सिद्ध होते।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शंकाकारके [गुरुत्व गुणके पेशी- शंकाकार कहता है कि एक गुरुत्व नाम का भी गुण है। गुरु कहते है वजनदारको। गुरु कहते है भारीपनको। देखो! पदार्थमें भारीपन नामका भी एक गुण है, जो कि पृथ्वी एवं जलमें रहता है। और, वह गुरुत्व गुण पतन क्रियाका कारण है, अर्थात् गिर जाता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन ४ मेंसे बताना था कि गुरुत्व किसमें पाया जाता है? तो अग्निमें गुरुत्व नहीं मान रहे क्योंकि अग्निका क्या वजन? यदि जलती हुई अग्निका भी वजन है तो वह ईंधनका वजन है अग्निका नहीं। इसी तरह कभी हवाका भी वजन होता है तो वह कोई उपाधिवश होता है। हवामें स्वयंमें कुछ वजन नहीं। तो इस तरह वजन नामक गुण पृथ्वीमें और जलमें पाया जाता है। पृथ्वी भी तोली जाती है, सोना, चाँदी, लोहा, पत्थर, मिट्टी सभी तोले जाते हैं। तो गुरुत्व नामक गुण पृथ्वी और जलमें रहने वाला है। और पतनका कारणभूत है। जिनमें गुरुत्व होता है वह चीज गिर जाती है। इस तरह १८वाँ गुण यह पतन नामक है। ऐसा शंकाकार अपने गुण पदार्थके प्रसंगमें गुरुत्व नामक गुणकी सिद्धि कर रहा है।

गुरुत्वके गुणत्वकी शंकाका समाधान— अब समाधानमें कहते हैं कि गुरुत्व नामक गुण जो बतला रहे हो वह तो युक्त है और पुद्गलका गुण है लेकिन यह समझना चाहिये कि पुद्गलमें जो चार गुण हैं —स्पर्श, रस, गंध, और वर्ण, उनमें स्पर्श नामक शक्तिका इन स्कंधोंमें यह एक परिणमनको भी गुण कहा जाता है और शक्तिको भी गुण कहा जाता है। पर गुण गुण नाम सुनकर अर्थ जरूर सही और भिन्न–भिन्न समझना चाहिये। पर्यायरूप गुण तो अनित्य होता है और शक्तिरूप गुण नित्य होता है। तो गुरुत्व गुण है और वह पुद्गलका ही गुण है, लेकिन गुरुत्व के बारेमें यह कहना कि गुरुत्व अतीन्द्रिय है अर्थात् इन्द्रियके द्वारा जाना नहीं जाता और, पतनसे उसका अनुमान होता है याने कोई चीज गिर गयी तो उससे जाना कि इसमें वजन है तभी तो गिरी, इस प्रकार जो विशेषवादमें कहा गया है कि गुरुत्वमें दो बातें हैं कि अतीन्द्रिय है, इन्द्रिय द्वारा गम्य नहीं है, और गिरनेकी क्रियासे उस का अनुमान होता है यह बात युक्त नहीं है। बात तो यह है कि गुरुत्व अतीन्द्रिय नहीं है। हाथपर चीज रखकर हम जानते हैं कि यह इतनी वजनकी चीज है। कितने ही लोग तो इतने चतुर होते हैं कि हाथपर लेकर ही बता देंगे कि यह चीज इतने किलो अथवा इतने तोले है। तो देखो स्पर्शनइन्द्रियसे जान लिया गया ना, कि इसमें गुरुत्व है? यह चीज इतने तोला है, इतनी बारीखोकी जानकारी तो मनकी सहायतासे हुई। कोई इतनी बारीखोसे न जान सके, किन्तु वजन तो हर एक जीव जान जाता है। बैल, घोड़ा आदिपर भी वजन लादा जाता तो क्या वे इतना नहीं समझ पाते कि मुझपर वजन लदा है? हाँ यह न जान पायेंगे कि इतने मन या इतने किलो का वजन लदा है। गुरुत्वका बोध तो स्पर्शनइन्द्रिय द्वारा हो जाता है। तो वह गुरुत्व अतीन्द्रिय नहीं है पहिली बात। दूसरी बात यह है कि यह कहना कि पदार्थके वजन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का ज्ञान होता है गिरनेसे। लेकिन हाथके तलवापर रखी हुई कोई चीज है अब वह गिर तो नहीं रही। तो पतनका उपलम्भ न होनेपर भी गुरुत्व बराबर समझमें आ रहा है कि यह इतनी वजन वाली चीज है। पदार्थका गुरुत्व गिरनेसे अनुमेय होता है। यह बात तो सही न रही। नहीं गिर रही चीज, हाथपर रखी है और उसके वजनका अनुमान हो रहा है।

गुरुत्वके अतीन्द्रिय न होनेका प्रश्नोत्तरमें वर्णन—शंकाकार कहता है कि थोड़ा सा कोई धूलका कण भी हथेलीपर रखे हों तो उसका वजन तो ग्रहणमें नही आता। तो अगर इन्द्रिय द्वारा या गिरनेके अनुपलम्भ होनेपर भी गुरुत्व जाना जाता, अपने हाथपर रखा हुआ रजका कण गुरु है ऐसा बोध क्यों नही होता? उत्तर देते हैं कि वह रजकण इतना सूक्ष्म है कि उसका गुरुत्व ग्रहणके अयोग्य है। यदि इतने मात्रसे कि ग्रहणके अयोग्य है गुरुत्व रजकणमें इस कारण उसे अतीन्द्रिय मान लिया जाय तो गंध रस आदिक पदार्थ भी अनेक ऐसे होते हैं कि ग्रहणके अयोग्य होते हैं। कोई बिल्कुल ही हल्की गंध है वह ग्रहणमें नहीं आती, विशिष्ट होती तब ग्रहणमें आती। जुखाम वालेको गंध ग्रहणमें नहीं आती। रूप भी किसीका ग्रहणमें आता, किसीका नही आता। जिसकी आँखें निर्मल हैं वह एक मील तककी बातको भी देख लेगा। और जिसकी आंखोंमें दोष है वह दो हाथ दूर तककी बात भी न जान सकेगा। तो ग्रहणमें न आनेसे उसमें गुरुत्वका अनुपलम्भ हो जाय तो इस तरह ग्रहणमें न आनेसे गंध रस आदिकका भी अभाव हो जायगा, क्योंकि ग्रहणमें कहां आया? साथ ही यह भी परखो कुछ दूर पर गंध रस वाले फल रखे हुए हैं वे आँखों दिख रहे हैं मगर ग्रहणमें कहाँ आ रहे कि कैसा रस है? कैसा गंध है? तो जो बात जिसके द्वारा ग्रहणके अयोग्य है वह ग्रहणमें नही आ सकती, पर इतने मात्रसे यह नही कह सकते कि वह अतीन्द्रिय है। यह चर्चा चल रही है उन गुणोंकी जो गुण पुद्गलमें रहता है, जो गुण आत्मामें रहते हैं उनकी कथनी यद्यपि अध्यात्मरुचिक होने से कुछ सुहाती है, शीघ्र समझमें आती है मगर जैसे आत्मा भी पदार्थ है इसी तरह पुद्गल भी तो पदार्थ है। और पुद्गलके सम्बन्धमें अगर हम गुणोंकी विशेष जानकारी करें तो पुद्गलसे हटनेके लिए हमें वहां ही इतना भेदज्ञान तो बनेगा इसलिए पुद्गलके गुणोंकी जानकारी है ऐसा जानकर अधिक उपेक्षाके योग्य प्रकरण नही है। इस प्रकरणको भी ध्यानपूर्वक सुनिये! शंकाकार यह सिद्ध कर रहा कि इन पदार्थोंमें गुरुत्व नामका भी गुण है। और सिद्धान्त यहां यह है कि ये पदार्थ जो दृश्यमान हैं, जिन्हें पुद्गल कहते हैं इन पदार्थोंमें मुख्य गुण है रूप, रस, गंध, स्पर्श। उस स्पर्श के सही तो चार परिणमन हैं—स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण। जो कभी व्यभिचरित नही होते। इन चार परिणमनोंमें तो दो-दो जोड़े हैं और परस्पर विरोधी है, जहाँ स्निग्ध है वहां रूक्ष नही जहाँ शीत है वहाँ उष्ण नही। अतएव एक पदार्थमें दो पर्याय मिलेंगे स्निग्ध रूक्षमें एक, शीत उष्णमें एक। लेकिन जब ये पुद्गल परमाणु मिल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जुड़कर स्कंधकी सकलमें आते हैं उस समय इसमें चार परिणमन और प्रकट हो जाते हैं --वजनदार होना हल्का होना, कोमल होना और कठोर होना। जो शुद्ध परमाणु है, जो कि स्पर्श द्रव्य है उसमें ये चार परिणमन न मिलेंगे। कोई परमाणु कठोर है, कोई कोमल है, ऐसा तो नही है। लेकिन जब परमाणुवोंका संयोग हो जाता और एक पिण्ड बन जाता तो उसमें चार बातें ये और बढ़ जाती हैं—कोमल होना, कठोर होना, भारी होना और हल्का होना। तो पुद्गल स्कंधोंमें स्पर्श गुणका यह परिणमन है --वजनदार होना। यह शक्ति भूतगुण नही, किंतु शक्तिका परिणमनरूप गुण है।

द्रवत्वको गुण पदार्थ माननेकी शंकाकारकी मान्यताका कथन--अब शंकाकार कहता है कि एक द्रवत्व नामका भी गुण है। द्रवत्व कहते हैं प्रवाह होने को। यह द्रवत्व गुण पृथ्वी, जल और अग्निमें पाया जाता है। विशेषवादी कह रहे हैं कि जो बहनेका गुण है। बहाव हो जाता है यह गुण पृथ्वीमें मिलेगा। जलमें मिलेगा। पृथ्वीमें बहाव गुण मिलता है और अग्निमें भी बहाव गुण मिलता है यह बात जरा कठिनाईसे समझमें आनेकी है और जलमें प्रवाह गुण है यह स्पष्ट है। तो इसका कारण यह है कि पृथ्वी और अग्निमें तो द्रवत्व नैमित्तिक गुण है और जलमें द्रवत्व स्वतः सिद्ध गुण है। जल बह जाता है यह तो जलका स्वयमेव एक गुण है। और अभी पृथ्वी भी बहती है। जैसे लाख पिघली और बह गयी। तो लाखमें अग्नि का सम्बन्ध हुआ उस वजहसे लाख पृथ्वी होकर भी बह गई। सोना चाँदी भी कभी बहते हैं कि नहीं ? बहते हैं। तो पृथ्वी और अग्निमें जो बहाव है वह तो है नैमित्तिक और जलमें जो बहाव है, द्रवत्व है वह है स्वतः सिद्ध तो इस प्रकार यह १९ वां गुण द्रवत्व है।

द्रवत्वके गुणत्वकी मान्यताका निराकरण--उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि पृथ्वी और अग्निमें भी द्रवत्व है यह बात सही नहीं है। हाँ कभी ऐसा देखा जाता है कि जैसे कि विशेषवादमें स्वर्णको अग्निका पुत्र माना है। ऐसा पुराणों में वर्णन चलता है ना ! तो अब स्वर्ण क्या हुआ ? अग्नि, तैजस स्वर्ण पृथ्वीमें नहीं माना गया है विशेषवादमें। चाँदी, लोहा आदि तो पृथ्वी हैं और स्वर्ण है तैजस। तो विशेषवादके आगमसे यह बात प्रसिद्ध है कि स्वर्णादिक कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो अग्निके पुत्र हैं लेकिन उन सबमें पहिला पुत्र है स्वर्ण। तो इससे यह सिद्ध हो गया कि स्वर्ण अग्नि है। अब उसमें द्रवत्व गुण तो अभी नहीं है लेकिन जब अग्निका संयोग हो जायगा और वह स्वर्ण गल जायगा तो गलनेपर स्वर्णमें द्रवत्व अग्निका नही है किन्तु जलीय द्रवत्व है अब उसमें जल तत्त्व आ गए हैं उसके कारण उसमें प्रवाह आया। इसी प्रकार लाख आदिक पृथ्वी द्रव्य हैं, उनमें बहाव नहीं रहता, लेकिन जब अग्निका संयोग होता है तो उस उस पृथ्वीमें जलतत्त्व प्रकट होता है और फिर प्रवाह होता है। उसका वह जलीय तत्त्वका प्रवाह है। पृथ्वीका नही।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उस समय उस स्वर्णमें, उस लाख आदिक पार्थिव द्रव्यमें जलीय द्रवत्वका संयुक्त समवाय है। याने द्रवत्वका समवाय है जलमें और जलका संयोग हो गया है स्वर्ण और लाख आदिक पार्थिव द्रव्यमें तो जलीय द्रवत्वके संयुक्त समवायसे स्वर्णमें पार्थिव में द्रवत्व गुणकी प्रतीति होती है। वस्तुतः पार्थिवमें और अग्निमें द्रवत्व गुण नहीं है। शंकाकार यहाँ यह बात रख रहा है कि द्रवत्व भी गुण होता है लेकिन द्रवत्वके बारेमें निष्पक्ष बात तो सोचिये। द्रवत्व क्या ? बह गया। बहना क्या ? क्रिया हुई। कोई पदार्थ इस प्रकारके ढाँचे वाले होते हैं, इस तरहका उनका कार्य होता है कि वे नीची जमीन पायें तो वे बह जाया करते हैं। यह उन पदार्थोंकी विशेषता है, न कि द्रवत्व गुण कोई आश्रयभूत पदार्थमें है और उस द्रवत्वके कारण वह बहा करता हो, ऐसी बात नहीं है। यह तो पदार्थोंका अपना अपना संस्थान जुदा-जुदा है कोई कठिन होता है कोई द्रव होता है कोई तरल पदार्थ होता है, लेकिन विशेषवादमें तो बुद्धिमें कुछ भी समझमें आना तो चाहिये. फिर वे उनके पदार्थ बन जाते हैं।

भेद व अभेदका औचित्य व अनौचित्य— विशेषवादमें अभेदको आदर नहीं दिया गया है, अभेदको वे मिथ्या मानते हैं। हैं चीजें न्यारी-न्यारी और उनको इकट्ठी कर दिया और इकट्ठे में उन्हें एक मानना यह पदार्थ उनकी दृष्टिमें मिथ्या है लेकिन अभेद मिथ्या भी होता है, सम्यक् भी होता है, भेद मिथ्या भी होता है, सम्यक् भी होता है। उचित अभेद सही है, अनुचित अभेद मिथ्या है। उचित भेद सही है, अनुचित भेद मिथ्या है। जैसे पदार्थमें शक्तियाँ हैं, वे शक्तियाँ पदार्थोंमें अभिन्न हैं। अब उन शक्तियोंसे भी पदार्थका ऐसा भेद कर दिया जाय कि वे शक्तियां स्वतंत्र पदार्थ हैं और यह द्रव्य स्वतंत्र पदार्थ है। ऐसा स्वतंत्र मान लेना कि उनका उनसे सम्बन्ध कराने तककी भी गुंजाइसका उपाय सही न रहा। तो वह अनुचित भेद हो गया। मिथ्या हो गया पर द्रव्य द्रव्य ये सब जुदी जुदी सत्ता लिए हुए हैं, जीव जीव ये सब अनन्त हैं. अपनी अपनी स्वतंत्र सत्ता लिए हुए हैं। तो ऐसे इन जीवोंको एक आत्मा कह डालना यह है अनुचित अभेद। वह मिथ्या हो जायगा। पर जहाँ जैसा अभेद है उसे उस प्रकार मानना मिथ्या नही कहलाता। यह द्रवत्व गुणके सम्बन्धकी चर्चा चल रही है।

पार्थिव और अनलमें सदा द्रवत्व सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास— शंकाकार कह रहा है कि पदार्थोंमें द्रवत्व गुण भी है, लेकिन वह द्रवत्व गुण पृथ्वी, जल और अग्नि इन तीनमें पाया जाता है। समाधानमें यह कहा गया कि जलमें द्रवत्व परिणमन है, यह बात मान ली जायगी किन्तु पृथ्वी और अग्निमें भी द्रवत्व है यह स्वीकार नही किया जा सकता क्योंकि जब जब भी पृथ्वीमें और अग्निमें द्रवत्व आया तो उपाधिके सम्बन्धसे उसमें जब जल तत्त्वका संयोग हुआ तब बहाव आया। इसपर शंकाकार कहता है कि पृथ्वीमें और अग्निमें सम्बन्धके कारण जलीय तत्त्वमें बहाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आया है यह बात युक्त नही, किन्तु समस्त पार्थिव द्रव्य, समस्त तैजस द्रव्य द्रवत्वसे संयुक्त हैं, क्योंकि रूपी होनेसे। जो जो रूपी होते हैं वे वे सब द्रवत्व गुण वाले होते हैं। देखिये विशेषवादमें हवामें रूप नही माना गया। रूप पृथ्वीमें है, जलमें है और अग्निमें है पर हवामें नही है, ऐसा विशेषवादी लोग मानते हैं तो जितने भी पार्थिव हैं, जितने भी तैजस हैं वे सब भी द्रव है, प्रवाहशील हैं, बहने वाले हैं क्योंकि रूपी होनेसे जल रूप है तो उसमें द्रवत्व स्पष्ट है, जल बह जाता है अग्नि भी रूपी है, पृथ्वी भी रूपी है, उनमें भी रूप पाया जाता है। तो रूप होनेके कारण ये गुण और पार्थिव भी द्रव हैं।

पार्थिव और अनलमें द्रवत्व माननेकी शंकाका निराकरण—समाधान में कहते हैं कि यह बात कहना युक्त नही है। (प्रकरण बड़ा युक्तिसंगत चल रहा है) यह बात कही जा रही है शंकाकारकी ओरसे कि पृथ्वीमें सदा द्रवत्व पाया जाता है सम्बन्धकी अवस्थासे नहीं। और अग्निमें भी सदा द्रवत्व पाया जाता है। द्रव मायने बह जाना। जैसे पानी बह जाता है रूपी होनेसे। समाधानमें यह कह रहे हैं कि यह बात तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। आँखों ही उसमें दिख रहा कि पृथ्वी नहीं बह रही है व अग्नि नही बही है फिर प्रत्यक्षविरुद्ध बातको युक्तियोंसे सिद्ध करना यह युक्त नहीं हो सकता है। वह तो वाधित विषय है। बाधित विषयके बारेमें दिमाग लगाना, युक्तियां बताना कहांकी बुद्धिमानी है? कोई कहे कि अग्नि बर्फकी तरह ठंडी होती है क्योंकि द्रव्य होनेसे। कहने दो, अब जो कोई ऐसा कह रहा हो उससे बात करना बेकार है, क्योंकि वह मूढ़ोंका सिरताज है। उसको तो इस तरह समझाना चाहिए कि आगको उठाकर उसके हाथमें धर दो। बस वह अपने आप ही समझ जायगा कि अग्नि गर्म होती है या ठंडी। तो जो बात प्रत्यक्षवाधित है उसको युक्तियों और अनुमानसे साबित करना और रास्ता ढूंढ़ निकालना यह कोई विवेककी बात नही है। पृथ्वी और अग्नि ये दोनों नही बहती हैं। यह तो स्पष्ट ही समझमें आ रहा कि कहां बह रही। अब शंकाकार कहता है कि अजी पृथ्वीमें और अग्निमें इस प्रकारका द्रवत्व धर्म है कि जो प्रत्यक्षमें तो आता नहीं और बहावकी क्रिया भी नही करता। इस ही ढंगका द्रवत्व है पृथ्वीमें और अग्निमें। अच्छा, समाधानमें कहते हैं कि कोई यदि यह कहने लगे कि अग्निमें गुरुत्व और रस भी है। विशेषवादमें अग्निमें गुरुत्व नही माना गया और रस भी नहीं माना गया लेकिन कोई यह कह बैठेगा कि अग्निमें गुरुत्व रस मौजूद है इसमें कोई संदेह नहीं, कोई पूछ बैठे कि अग्निमें कुछ दिखता तो है नही, न वजन न रस। तो वह यों कह बैठेगा कि अजी! अग्निमें इस तरहका गुरुत्व और रस है कि जो प्रत्यक्षमें तो आता नही और पतन आदिक क्रिया भी नही करता। जैसे शंकाकार कह रहा था कि पृथ्वीमें और अग्निमें ऐसा द्रवत्व है, ऐसा द्रवत्व है। ऐसा प्रवाह वाला गुण है कि न तो प्रत्यक्षमें समझमें आता और न बहावका काम करता। हम कहेंगे कि अग्निमें ऐसा गुरुत्व गुण है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो न प्रत्यक्ष समझमें आता और न गिरनेका काम करता। और, अग्निमें ऐसा रस गुण है कि जो न प्रत्यक्षसे समझमें आता और न उससे तृप्ति आदिकके अनुभव होते। और, इस तरहका छुपा हुआ गुरुत्व धर्म अग्निमें मान लोगे तो कभी अग्नि ऊर्द्ध्वगमन वाली नहीं हो सकती। जिसमें वजन है वह कैसे ऊँचे उठेगी किन्तु अग्निमें ऐसा स्वभाव है कि उसकी ज्वालायें ऊपरको ही उठती हैं और फिर आपका जो यह सूत्र है कि रस पृथ्वी और जलमें ही रहता है, सो विरुद्ध हो गया वचन। देखो अब रस अग्निमें आ गया तो इस प्रकार द्रवत्वका पृथ्वीमें और अग्निमें सिद्ध करना एक असंगत बात है। जलमें तो द्रवत्व है सो वह द्रवत्व गुण क्या है ? वह जलका ही ऐसा परिणमन है, ऐसा ढाँचा है, ऐसी काय है कि वह निचली जमीन पाकर बह जाता है। तो द्रवत्व नामका गुण जैसा कि विशेषवादियोंने माना है वह सिद्ध नही होता।

शंकाकार द्वारा स्नेहनामक गुणका कथन—अब शंकाकार कहता है कि एक स्नेह नामका भी गुण है। जो कि जलमें ही पाया जाता है। जलके सिवाय अन्य तत्त्वमें स्नेह गुण नही होता। और, स्नेह गुणका काम क्या है ? स्निग्धताका ज्ञान करा देना। यह पदार्थ चिकना है इस प्रकारके ज्ञानका करानेका कारणभूत जो गुण है उसका नाम है स्नेह। पानीमें चिकनापन माना है। चिकनेपनका आधार पानी है। यद्यपि पानीमें अन्य चीजोंकी अपेक्षा स्नेह चिकनापन बहुत कम मालूम होता है, घी, तैल, या अनेक पदार्थ ऐसे हैं कि जिनके मुकाबलेमें पानीमें चिकनाई बहुत ही कम नजर आती है। लेकिन चिकनाई असलमें, पानीमें ही है। अन्य चीजोंमे चिकनाई का गुण नही है। मूल चीज स्नेहगुण तो जलमें ही पाया जाता है। ऐसा शंकाकार एक स्नेह नामक गुणका समर्थन कर रहा है।

स्नेहके गुणत्वकी सिद्धि करनेकी शंकाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कहना अयुक्त है कि स्नेह जलमें ही पाया जाता है। देखो घी आदिक अनेक पदार्थ हैं लोकमें, और वैद्यक शास्त्रोंमें लिखा हुआ है कि ये स्निग्ध होते हैं घी तैल आदिक। तब यह बात तो न रही कि पानीमें ही स्नेह पाया जाता है। शंकाकार कहता है कि घी आदिकमें जो चिकनेपनका ज्ञान हो रहा है वह जलके निमित्तसे हो रहा है। घी आदिक उन पदार्थोंमें जलीय तत्त्व है, जलका सम्बन्ध है इसलिए उसमें चिकनेपनका ज्ञान होता है। अब यहाँ दो बातें हो गईं। घी स्वयं जल नहीं है, तब फिर क्या होगा ? घी अग्नि भी नही है. घी हवा भी नही है, और घीको जलतत्त्व भी नही मान रहे तो बाकी पृथ्वी बची। तो घी विशेषवादमें एक पृथ्वीतत्त्व ही हुआ। वह एक द्रव्यका ढीला ढाला हो गया है, घी हो मगर घी पृथ्वी द्रव्य नही है। उस घीके साथ जलका सम्बन्ध है इसलिए उसमें चिकनापन नजर आता है, और जलकी तरह उसमें द्रवत्व भी प्रकट है, सो बहाव तो पृथ्वीमें भी माना गया है। तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

घी आदिकमें जो चिकना है ऐसा ज्ञान होता है वह जलके निमित्तसे होता है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात असगत है। हम उल्टी भी कल्पना कर सकते हैं कि चावल आदिकमें जलका सम्बन्ध होनेपर भी उनमें स्निग्ध प्रत्यय नही होता अर्थात् उनमें चिकनाई नही आती लेकिन घी आदिकका सम्पर्क होनेपर सभी पदार्थोंमें चिकनाई आ जाती है। शंकाकार यह कह रहा था कि घीमें चिकनाई समझमें आती है वह जलके सम्बन्धसे आती है। उत्तरमें कह रहे हैं कि जलके सम्बन्धसे अगर चिकनाई हो जाया करे तो कंकड़, चावल गेहूँ आदिक सभी पदार्थोंमें पानीका सम्बन्ध कर देनेसे चिकनाई आ जाना चाहिए। मगर ऐसी बात तो नही देखी जाती। तो आपका यह कहना असगत है कि घीमें जो चिकनापन समझमें आया है यह जलके सम्बन्धसे आया है। और, वास्तविक चिकनापन तो जलमें है, यह कहना संगत नही है। अब शंकाकार कहता है कि देखो चावल आदिकमें जब पानी डालते हैं, पकाते हैं तो देखो वह पानी बन्धका कारण बन गया। इससे सिद्ध है कि पानिमें स्नेह नाम गुण है। उत्तरमें कहते हैं कि देखो! आपने दूध लाख आदिको स्नेह रहित पदार्थ माना हैं। तत्व विशेषवादमें दूध भी जलतत्त्व नही है, वह भी पृथ्वी तत्त्व है। तो दूध स्नेह रहित है, लाख स्नेह रहित है लेकिन ये भी बंदके कारण हो जाते हैं। चीज बँध जाती है और लाख भी बँधका कारण होती है। लाख तो इस तरहसे पदार्थोंको जकड़ लेती है कि उसका हटाव भी बड़े श्रमसे होता है। तो यह कहना कि पानी बँधका कारण होनेसे स्नेह गुण वाला है यह नियम न रहा। बंधके कारण तो अनेक पदार्थ हैं लेकिन वे स्नेह गुण वाले कहाँ हैं? इससे सिद्ध है कि स्नेह नामका गुण पानीमें ही है, ऐसा कहना अनुचित है। देखिये! स्नेह गुण है और उसके आधारभूत शक्तिका नाम है स्पर्श चिकना गुण स्पर्शका ही परिणमन है। चिकनेपनका विरोधी है रूखापन। ये दोनों ही बंध के कारण माने गये हैं स्निग्ध और रूक्षता। इन दोनोंके कारण परमाणु परमाणु में बंध होता है। अब जो मोटे स्कंध है उनमें जो बंध होता है, सम्बन्ध होता है वह परमाणु परमाणु जैसा वास्तविक बंध नहीं है, वह संयोगमात्र बन्ध है। बन्ध असली उसका नाम है कि बंध होनेपर दूसरा भी पूरा वहीका वही बन जाय। जैसे—चार गुण वाला स्निग्ध परमाणु है और ६ गुण वाला रूक्ष परमाणु है। जब इन दोका बंध हो जाता है तो दोनों परमाणु पूर्णतया रूक्ष गुण वाले हो जाते हैं। वहाँ स्निग्धताका अंश नही रहता। तो बन्धमें यह हालत होती है लेकिन 'बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ', यहांके बाह्य पदार्थोंका जो चिपकाव है वह है एक संयोग होनेपर यह हालत रह सकती है कि उस एक पिण्डमें कुछ अंशोंमें रूक्षता पायी जा रही हो और कुछमें स्निग्धता पायी जा रही हो। ऐसा वह स्निग्ध गुण नही है, वह स्पर्श गुणका परिणमन है, जितने पुद्गल हैं सबमें स्पर्श गुण है। तो यह कहना कि स्नेह केवल जलमें ही होता है यह बात असंगत है।

स्नेहको गुण माननेपर कठोरता कोमलता आदि अनेक गुणोंके प्रसङ्ग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में गुणसंख्याभिघात—वैशेषिक सिद्धान्तमें स्नेहको गुण माना है। स्नेह है तो परिणमन, चिकनाई, यह स्पर्शगुणका परिणमन है, किन्तु स्पर्श गुण पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चारों पदार्थोंमें रहता है। उनमेंसे केवल जलमें स्नेह गुण मानना और उसे भी गुणरूपसे स्वीकार करना इस बातका निराकरण चल रहा है। स्नेहको गुण मानने पर फिर तो कठोरता कोमलता इनको भी गुण मानना चाहिए। अगर चिकनाई गुण बन गया तो कठोरता किसमें शामिल करोगे ? और, कोमलपना किसमें शामिल करोगे ? उसे भी अलगसे गुण मानना चाहिये। और. जब इसे गुण मानना चाहिये। और, जब इसे गुण मान लेंगे तो २४ गुण हैं यह संख्या सही न रही। अधिक संख्या बढ़ गई। यहाँ शंकाकार कहता है कि कठोरता आदिक तो संयोगविशेषरूप है इसलिए उनका संयोग गुणमें ही अन्तर्भाव है, संख्याका विघात नहीं होता। कठोरता किसे कहते हैं ? अवयवोंका दृढ़ संयोग होनेका नाम है कठोरता। और अवयवोंका प्रकृष्ट शिथिल होनेका नाम है कोमलता। जो पदार्थमें परमाणु हैं, अवयव हैं, अंश हैं वे अगर बड़ी दृढ़तासे संयुक्त हैं तो कठोरता आती है और वे अवयव यदि शिथिलतासे संयुक्त हैं तो वहाँ कोमलपन आता है, तो संयोगविशेषरूप है कठोरता और कोमलता। यह कोई विशेष गुण नहीं है। समाधानमें कहते हैं कि यदि अवयवोंके दृढ़ संयोगका नाम कठोरता हो याने अवयवोंके संयोग को ही कठोर बोलें तो संयोग तो आंखोंसे दिखता ना ! तो कठोर भी आँखोंसे दिख जाना चाहिए। जो जिसका विशेष होता है वह उसके द्वारा जान ही लिया जाता है। जैसे रूपका विशेष है काला पीला आदि। इसलिये देखो ! रूपके जानते ही काला पीला भी जान लिया जाता है। इसी तरह अब अब अवयवोंके संयोगका नाम रख दिया। इसको कठोरता और इसका संयोग आंखोंसे दिख रहा है तो कठोरता क्यों न दीखेगी ? तुमने शिथिल संयोगका नाम रख दिया कोमलता सो फिर कोमलता भी दिख जाना चाहिये। जो जिसका विशेष होता है वह उसके जान लिए जानेपर जान ही लिया जाता है। जैसे रूपके जान लेनेपर रूप का विशेष नीलादिकपना भी जान लिया जाता है लेकिन संयोग प्रतीयमान हो रहा है, जो भी पदार्थ दिख रहा है सबका संयोग स्पष्ट समझमें आ रहा, यह बेञ्च है, कठोर है, इसका अवयवोंमें दृढ़तर संयोग है दिख रहा है लेकिन संयोग विशेषका नाम तुम कहते हो कठोरता तो कठोरपन विदित हो जाना चाहिये। इससे सिद्ध है कि संयोग विशेषका नाम कठोरता नहीं। और भी देखो ! चटाईके अवयवोंमें जब संयोग शिथिल हो जाता है, चटाई पुरानी पड़ गई, टूट गयी, उसकी सींके भी टूट जाती हैं, फैल भी जाती हैं तो ऐसा शिथिल संयोग हो गया चटाईके अवयवोंमें, लेकिन कोमलताका वहाँ भान कहाँ होता है ? कितना ही शिथिल संयोग हो जाय चटाईके अवयवोंमें, पर वे कठोर ही रहते हैं, और, देखो ! चमड़ा रबड़ आदिक—इनमें दृढ़ संयोग है शिथिल नहीं, शिथिल संयोग टूटे–फूटे चीजोंमें कह सकते हो तो चमड़ा रबड़ आदिकमें दृढ़ संयोग होनेपर भी शिथिल संयोग नहीं है लेकिन कोमलता पाई जाती है इस कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह नही कह सकते कि अवयवोंके संयोग विशेषका नाम कठोरता है और कोमलता है जब संयोग विशेष सिद्ध न हुआ कठोर और कोमल तो इनका अलगसे गुणमें नाम बताना चाहिये, तब संख्याका व्याघात होना सही बन जायगा।

कठोरताको संयोगविशेषरूप माननेकी शंका पर विचार—शंकाकार कहता है कि कठोरताको यदि संयोगविशेष रूप नहीं मानते तो बताओ कि कोई कठोर वस्तु जैसे कोई ग है अन्नका उसको जब बहुत पीसते हैं हाथसे या यंत्रसे तो उसमें कोमलता फिर कैसे आ जाती है ? कोमलता इसी कारण हो तो आयी कि संयोग विशेषका नाम था कठोरता और वह संयोग - विशेष हो गया शिथिल पीसनेसे, तब देखो उसमें कोमलता आयी है, इससे सिद्ध है कि संयोग विशेषका नाम कठोरता है। उत्तर देते हैं कि वहाँ हुआ क्या कि कठोर पर्यायमें परिणत द्रव्य निमित्त विशेषका सन्निधान पाकर कोमल पर्यायमें परिणत हुआ है और इस दृष्टिसे कठिन पर्यायमें रहता हुआ पदार्थ अन्य था, और मृदु पर्यायमें परिणत द्रव्य अब अन्य हो गया है। तो वही द्रव्य कोमल नहीं हो गया है किन्तु पहिलेकी कठिन पर्यायकी निवृत्ति होनेपर कोमल पर्यायसे युक्त अन्य द्रव्य ही उत्पन्न हुआ है। यहाँ केवल द्रव्यकी बात नहीं कह रहे, पर्याय संयुक्त द्रव्य कहा जा रहा है। केवल द्रव्यकी बात यदि कहो तो लोकव्यवहारमें जैसे कहते कि वह मर गया, वह पैदा हो गया, यह बात नही ठीक बैठ सकती, क्योंकि आत्मा मरता कहाँ, पैदा कहाँ होता ? किन्तु इस तरह कोई कहे कि मनुष्य पर्याय सहित जीव मर गया तो यह बात सही बैठ जायगी। देवपर्याय संयुक्त जीव उत्पन्न होना सही बैठ जायगा। तो इसी तरह पहिले कठोर पर्याय परिणत द्रव्य था। अब मृदु पर्याय परिणत अन्य द्रव्य पैदा हुआ है। और, देखो - जो संयोगविशेषको कोमलपना कहते हैं वे लोग भी पूर्व द्रव्यकी निवृत्ति तो यहाँ मानते ही हैं। अब कठिन द्रव्य न रहा, अब कोमल द्रव्य हो गया, इस कारण इस प्रसंगमें यथार्थ बात यह है, और इसे ही यथार्थ समझना चाहिये कि पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श गुण हुआ करते हैं। भले ही किसीमें कोई गुण तिरोहित है, कोई आविर्भूत, लेकिन यह मूर्तिकतासे सम्बन्ध रखता है। जो जो मूर्तिक पदार्थ हैं वे रूप, रस, गंध स्पर्श चारोंमय हुआ करते हैं। तो स्पर्श नामक गुण है और उसकी ८ पर्यायें हैं। केवल मृदुता और कठोरताकी ही बात नही है किन्तु स्निग्ध, रूक्ष, शीत उष्ण, कठोर मृदु, गुरु और लघु ये ८ प्रकारके स्पर्शगुणके परिणमन हैं। और जब जब भी जो भी पदार्थ किसी पर्यायको छोड़कर अन्य पर्यायमें पहुंचता है, कठोरताको छोड़कर मृदुतामें पहुंचता है तो हुआ क्या वहां ? निमित्त सन्निधान पाकर वही पदार्थ पूर्व पर्यायको छोड़कर उत्तर पर्यायमें आया है। तो पर्यायदृष्टिसे उस द्रव्यमें भी अन्यता आ गयी। कठिन पर्यायसंयुक्त द्रव्य और था, कोमल पर्याय संयुक्त द्रव्य और हो गया है। यों मृदुता नामका कोई गुण नही है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शंकाकार द्वारा संस्कारनामक गुणकी सिद्धिमें वेग गुणका निरूपण – अब शंकाकार कहता है कि २४ गुणोंमेंसे २१ वाँ गुण संस्कार नामका भी है। देखते हैं हम चेतन पदार्थोंमें और अचेतन पदार्थोंमें भी उनमें संस्कार बना हुआ है। संस्कार तीन प्रकारके होते हैं - एक वेग नामका संस्कार, दूसरा –भावना नामका संस्कार और तीसरा— स्थित स्थापक नामका संस्कार। वेग नामका संस्कार तो मूर्तिक पदार्थोंमें होता है। कुम्हारने घड़ा बनानेके लिये जो चाकको डंडेसे घुमाया और अब घुमाना बंद कर दिया, डंडा भी रख दिया, लेकिन वह चाक काफी देर तक घूमता रहता है। तो उसमें लोग क्या कहते हैं ? अब वह चाक क्यों घूम रहा है कि उसमें संस्कार पड़ा हुआ है। वह कौनसा संस्कार है ? वह है वेगनामक संस्कार। उसमें वेग गुणका समवाय बनाया गया था और वह वेग कुछ संस्कृत हो गया तो बादमें भी वह वेग बराबर कुछ समय तक चलता रहता है। कोई बच्चे लोग एक खेल खेला करते हैं। खिन्नीकी दो पोली लकड़ियाँ ले लिया और उनके एक एक ओर कलमकी तरहसे छील दिया। उन दोनोंको बाँध दिया। उसपर गीली मिट्टी भी लगा दी। अब एक घड़ेमें एक लकड़ी डाल दिया और एक लकड़ी बाहर रह गयी। अब बाहर वाली लकड़ीमें थोड़ासा मुहसे हवा खींचा और छोड़ दिया तो धीरे धीरे सारा घड़ेका पानी बाहर आ जाता है। अब बतलाओ वह सारा पानी खींचा तो उसके खींचने वाला कौन है ? कोई नहीं। यही तो कहा जायगा कि संस्कार पड़ा हुआ है। तो वेग नाम का संस्कार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और मन इन मूर्तिक पदार्थोंमें पाया जाता है। पृथ्वीमें कोई वेग उत्पन्न किया तो उस वेगके कारण आगे भी क्रिया चलती रहती है। जलमें भी वेगसे क्रिया चलती है। अब बच्चोंके उस खेलमें पानी जो सारा घड़े का अपने आप निकल गया वह जलका वेग ही तो था। अग्निमें भी वेग होता है। मनकी गति बड़ी शीघ्र गमनकी बतायी गई है। अब उनमें कारण क्या पड़ता है ? कहीं प्रयत्न कहीं अभिघात। और, उनसे उन कर्मोंका वेग उत्पन्न होता है और वह वेग नियत दिशामें क्रियाके रचनेका कारण होता है। वेग होता है तो उसकी निश्चित दिशा है। कुम्हारके चक्रका अगर वेग है तो इस ही तरहसे क्रिया करता रहेगा। बाणमें अगर वेग आ गया तो उस बाणकी भी नियत दिशा रहेगी। तो नियत दिशा में क्रिया रचनेका कारणभूत है वेग नामका संस्कार। और वह स्पर्शवान द्रव्यके संयोगका विरोधी है. अर्थात् वेगसे बाण चलकर और कहीं छिड़ गया तो उसका वेग खतम हो जाता है जैसे कुम्हारके चक्रमें वेग चल रहा है और उस चक्रको कुम्हार रोके तो रुक जाता है। तो वेग नामका संस्कार वह है जो नियत दिशामें क्रियाके रचे जानेका कारण बने और स्पर्शवान द्रव्यके संयोगका विरोधी हो। याने स्पर्शवान किसी अन्य द्रव्यका संपर्क हो जाय तो वेग समाप्त हो जाता है। तो इसी प्रकार एक संस्कार नामका भी गुण है जिसका कि प्रथम भेद है वेग।

वेगनामक गुणके सद्भावकी शंकाका समाधान अब उक्त शंकाके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समाधानमें कहते हैं कि बेग नामका संस्कार तुम मूर्तिक पदार्थोंमें ही कह रहे हो सो यह अवधारण ठीक नहीं है। देखो ! बेग नामका संस्कार आत्मामें भी सम्भव है, आत्मा भी सक्रिय होता है। एक जीव मनुष्य लोकसे मरा और ऊर्ध्व लोकमें उत्पन्न हुआ तो वह क्रियाके बिना कैसे चला गया ? और, यहां भी देखते हैं कि शरीर चलता है तो शरीरके साथ आत्मामें भी क्रिया हो रही है। तो बेग नामक संस्कार है और वह गुणरूप है या नहीं। इसकी मीमांसा तो बादमें कहेंगे पर बेग कोई धर्म है। लेकिन वह बेग पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और मन इनमें हीं रहता हो सो बात नहीं। वह जीवमें भी पाया जाता है। सो अब यह सिद्धान्त न रहा कि बेग पृथ्वी जल अग्नि वायु व मनमें ही होता है। अब बेगकी बात सुनिये ! बेग किसे कहते हैं ? बेग क्रिया से भिन्न और किसी चीजका नाम नहीं। क्रिया शीघ्र हो रही हो उसे बेग कहते हैं। शीघ्र उत्पत्ति मात्रमें बेग व्यवहारकी प्रसिद्धि है। शंकाकार कहता है कि बेगमें और क्रियामें बड़ा फर्क है। यदि क्रियाका ही नाम बेग होता तो यहाँ दो शब्द देनेकी क्या जरूरत थी ? 'जा रहा है' यह भी क्रिया और 'बेगसे' यह भी क्रिया। तो बेग क्रिया से अर्थान्तर चीज नहीं है यह बात युक्त नहीं घटती। समाधानमें कहते हैं कि जब यह कहा पाता है कि बेगसे जाता है तो उसका अर्थ यह है कि शीघ्र जाता है। बेगमें और शीघ्रमें तो फर्क नहीं। अब यह बेग और शीघ्र क्रियाका विशेषण हो गया। तो जिस बेगको आप संस्कार कहते हो वह बेग क्रियाका ही नाम है। कोई संस्कार नामका गुण नहीं है। बात तो सारी व्यावहारिक चल रहीं है। शंकाकार तो यहाँ कई अट-पट नटखट बता रहा है। एक गोलीको अगर फेंक दिया और वह गोली बहुत दूर तक चलती जा रही है तो दूर तक चली जानेमें कारण संस्कार बेग नामका गुण है जिस की वजहसे गोली चलती जा रही है और उस बेगका गोलीमें समवाय सम्बन्ध हो रहा है। कोई एक ही बात नहीं है। उसमें कई विडम्बनायें मानी गई हैं। बेग नामका गुण एक है दुनिया में। उस बेग गुणका सम्बन्ध हुआ है जिस जिसमें, वे वे चीजें बेगसे चली जाती हैं। ऐसे अनेक विडम्बनाओं रूप बेग गुणको मान रहा है शंकाकार लेकिन यहाँ देखिये, तो क्रियाके सिवाय बेग नामका गुण कुछ नजर ही नहीं आता। क्रिया किसीमें तेज है तो उसीको हम बेग कहते हैं और क्रिया कम है तो उसे हम कम बेग कहते हैं। कोई छोटा नाला भी बहुत तेजीसे बह रहा है तो उसे कहेंगे बेगसे बह रहा है और यमुना जैसी नदी जिसमें बहुत जल है लेकिन वह बेगसे नहीं बहती है। तो बेग तो क्रियाकी विशेषताका नाम है। क्रियामें शीघ्रता हो तो उसे बेग कहने लगे क्रियामें मंदता हो तो उसे कम बेग कहने लगे। तो बेग नामका गुण कुछ नहीं है किन्तु बेग क्रियाका ही नाम है।

कर्मसे कर्मका आरम्भ माननेपर बेगगुणत्ववादीकी शंका और उसका समाधान—अब यहां शंकाकार कहता है कि देखो – जैसे कहा कि यह बाण बेगसे जा रहा है तो यहाँ बेग का भी नाम तुमने क्रिया बताया और "जा रहा है" का भी

http://www.jainkosh.org

नाम तुमने क्रिया बताया, तो क्रिया क्रियाका रचने वाला बन गया। वेगसे बाण जा रहा है। तो 'वेग' नामक क्रियाने 'जा रहा' क्रियाको रच दिया, तो जब कर्म कर्मको रचने वाले बन गए तो फिर किसी भी जगह वह कर्म बन्द न होना चाहिए। जब क्रियाने क्रियाको रचा, वेगने जानेको रचा, तो फिर जो क्रिया हो रही है वह कहीं समाप्त न होना चाहिये, क्योंकि वेग सब जगह दुनियामें मौजूद है विशेषवादके सिद्धान्त के अनुसार। उसका जब समवाय होता है तो चीजमें क्रिया होती है। तो जब वेग ही क्रियाका आरम्भ करने वाला बन गया तब फिर क्रिया हमेशा ही होना चाहिये, कभी उसका विश्राम न आना चाहिये। तो उत्तरमें आक्षेप पूर्वक कहते हैं कि देखो विशेष॰ वादियो: आपने शब्दोंके प्रकरणमें भी यह बात कही थी कि शब्द जो बोले जाते हैं वे श्रोताके कानोंमें नहीं पहुँचते, किन्तु एक शब्दके बाद लहर रूपसे दूसरा शब्द बना, उस शब्दसे तीसरा शब्द बना, फिर चौथा शब्द बना, इस तरह बीची तरंग न्यायसे शब्द बनते हैं। जैसे समुद्रकी एक लहर उठी, तो आगे वह लहर तब तक नहीं मिटती है जब तक कि दूसरी लहरको पैदा न करदे। दूसरी लहरको पैदा करके वह वहाँ रुक जाती है। दूसरी लहर आगे चलती है। फिर दूसरी लहर तीसरी लहरको पैदा करके वहीं रुक जाती है तीसरी आगे चलती है। इसी तरह शब्द सिद्धान्तमें माना गया है कि जो शब्द बोला गया है वह दूसरे शब्दको उत्पन्न करके वहीं रुक जाता है। दूसरा शब्द आगे चला जाता है। और फिर वह दूसरा शब्द तीसरे शब्दको उत्पन्न करके वहीं रुक जाता है और तीसरा शब्द आगे चला जाता है। इस तरह यदि शब्दसे शब्द बनना बताते हो तो फिर कहीं शब्दका विश्राम भी न होना चाहिये। किसी पुरुषकी आवाज ५० गज तक सुनाई देती है, उसके बाद फिर शब्द खतम हो जाते हैं। क्यों हुए खतम ? जब शब्द शब्दको रचते हैं तो ५० गजके बाद भी शब्द रच जाना चाहिये। इस तरह शब्दका कहीं भी विश्राम न होना चाहिए। लेकिन तुम वहाँ यह कहते हो कि शब्द शब्दान्तरको रचने वाला है तो भी कहीं उसका विश्राम हुआ करता है। तो यही बात यहाँ लगा लो कि कर्म कर्मका आरम्भक हैं तो भी उस कर्म का कहीं विराम हो जाना चाहिये। अब उस वस्तुकी क्रियाकी विशेषता अगर देखो तो यहाँका छोड़ा हुआ बाण एक मील तक जो पहुंचता है, और देखो ! क्रिया क्रिया को पैदा करती जाती है यह बात भी समझमें आ रही है। यहाँसे बाण छोड़ा तो १० गज तक गया, उसी क्रियामें क्रिया चलती जा रही है। क्रियाको रचने वाली है क्रिया। उस क्रममें जो बाण छोड़ा गया उसका आरम्भक समझलो। अब छूट जानेके बाद आगे जो क्रिया बराबर चलती जा रही है तो उसका आरम्भक कौन ? उसका आरम्भक वेग क्रिया। क्रिया क्रियाको रचती चली जा रही है। इसीको आप लोग वेग नामका संस्कार कहते हैं और क्रियासे क्रियाके रचे जानेपर भी कहीं न कहीं क्रिया अपने आप शान्त हो जाती है। उसका जैसा वेग है उसके अनुसार ही गति होती है और वहाँ शान्त हो जाता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बेग गुणके माननेपर क्रियाके अविरामके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर—बेग संस्कार गुण माननेपर आपत्ति आती है—जैसे धनुधिरोने बाण छोड़ा और तुम मानते हो कि उस बाणमें बेगका संस्कार लग गया, उस बेग नामक संस्कारकी वजह से वह बाण एक मील तक चलता जा रहा है तो बेग नामका कोई भिन्न संस्कार यदि होता तो वाणका किसी भी जगह गिरना नहीं हो सकता । कोई विभिन्न संस्कार बाण आदिकके गिरनेका कारण नही है । यदि कोई बाणसे अतिरिक्त, बाण की क्रियासे अतिरिक्त बेग नामक संस्कार होता तो फिर बाण किसी भी जगह गिर नहीं सकता था क्योंकि गिरने न दे याने गिरनेसे रोकने वाला तो बेग नामका संस्कार है । जो गिरने नहीं देता, चलाये जाता है तो गिरनेका विरोधी बेग नामका गुण सदा ही मौजूद है फिर वह बाण गिरता क्यों है ? शंकाकार कहता है कि अब वह बाण यों गिर रहा है कि मूर्तमान वायु आदिके संयोगसे बेगकी शक्ति नष्ट हो गयी । याने बाण बेगसे चला लेकिन आगे वायुके संयोगका अभिघात हुआ उस वायुकी वजहसे बाणके बेगका अपघात हो गया इसलिए बाण गिर गया । तो समाधानमें कहते हैं कि फिर तो वह बाण पहिले भी गिर जाना चाहिए था । एक मील दूरपर जाकर क्यों बाण गिरा ? यदि कहो कि वहाँ वायुका संयोग हो गया तो वायु तो सब जगह थी तो पहिले भी बाण गिर जाना चाहिए था, क्योंकि उसका विरोधी जो वायुका संयोग है वह पहिले भी है बादमें भी है ।

बेग गुणकी सिद्धि और असिद्धिके शंका समाधान—शंकाकार कहता कि बाण पहिले यों नहीं गिरता कि पहिले तो बेग था बलवान । तो बलवान होनेसे वह बेग अपने विरोधी मूर्तमान द्रव्यको वायुको भी बेध करके हटा करके चलता गया और जब बहुत दूर जाते जाते बेग थक गया तब उस समय उसका विरोधी जो मूर्तिक द्रव्य है, जो हवा आदिक है वह बलवान बन गयी । उस समयके युद्धमें वहाँ बेग जो है वह समाप्त हो गया और उस समय मूर्तिक द्रव्य बाण वहाँपर गिर गया है । समाधानमें यह कहते हैं कि तुम्हारा बेग नामका गुण तो सब जगह मौजूद है । कहीं अगर थोड़ी देरको बेग निर्बल हो गया और वायु सामने बलवान आ गई और उसके कारण बाण गिर गया तो फिर उठ करके फिर उसको चल देना चाहिए, क्योंकि बेग तो सदा ही मौजूद है । और वहाँ बलवान वायु भी न रही तो उस समय फिर यह बेग बलवान हो बैठे और बाण आगे भी चलने लगे, पर ऐसा होता कहाँ है ? शंकाकार कहता है कि एक बार बाणका बेग जिन्दा हो जाय और बाणको आगे चलादे यह बात तो नही बन सकती । समाधानमें कहते हैं कि इस तरहकी व्यवस्था बनाने वाला कोई नियम तुम्हारे पास नहीं है । बेग सब जगह मौजूद है, पदार्थ सब जगह हैं । और सदा उनका सम्बन्ध है निमित्तकी भी कोई अपेक्षा नहीं फिर तो जब चाहे जिस चाहे जगहसे बाण छूटते रहना चाहिए । फिर तो सारी अटपटी बातें हो पड़ेंगी । तो बेग नामका कोई गुण नहीं है किन्तु पदार्थमें ही उस उस प्रकारसे क्रिया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विशेष होती है, और उस क्रियासे क्रिया चलती रहती है। और जब तक उस क्रियामें वेग है तब तक वह चलता रहता है। क्रियाका वेग समाप्त हुआ तो रुक जाता है। तो क्रियाका वेग मायने क्रियाकी ही विशेषतायें। वेग नामका गुण अलगसे नहीं हैं कि जिसके सम्बन्धसे पदार्थमें फिर ऐसी क्रिया हुआ करती हो। क्योंकि वेग नामका गुण माना और समवायी कारण हुए वे पदार्थ जिनमें वेग फसेगा, जिसमें वेगका सम्बन्ध माना जायगा वह पदार्थ समवायि कारण कहलाता है, याने उपादान हुआ। तो समवायि कारण भी सदा मौजूद है और वेग गुण भी सर्वत्र मौजूद है। जब सब चीजें सदा हैं तो फिर सभी चीजें स्थिर क्यों हैं? यहाँ वहाँ सभी चीजें भागती क्यों नहीं फिरती? इससे यह सिद्ध है कि वेग नामका कोई गुण नहीं है।

संस्कार गुणकी सिद्धि और निराकृतिका संक्षिप्त निर्देश—इस समय शंकाकार संस्कार नामक गुणके सम्बन्धमें बात कर रहा है। कोई बच्चा अगर बिगड़ गया हो तो लोग कहते हैं कि अजी! इसका संस्कार अच्छा नहीं है और कोई सुधर गया हो तो लोग कहते हैं—अजी इसका संस्कार बहुत बढ़िया था। अथवा एक इञ्जन किसी डिब्बेको धक्का दे दे तो वह डिब्बा बहुत दूर तक भागता चला जाता है तो वहाँ क्या है? वहाँ भी एक संस्कार है। तो संस्कार भी कोई चीज है। वह संस्कार है क्या चीज? विशेषवादी लोग तो कहते हैं कि संस्कार एक गुण है और वह गुण सारे जगतमें मौजूद है। और, उसका सम्बन्ध होनेसे, समवाय होनेसे पदार्थों में क्रिया होने लगती है। लेकिन संस्कार चीज है क्या कि जैसे चेतनमें तो बारबार उसकी भावना बनी रहती, भाव बनाये रहना, वह कहलाता है संस्कार। जैसे जब किसी बालकके प्रति कहते हैं कि इस बालकका खोटा संस्कार था, मायने इस बालकने कई वर्षों तक खोटी बातोंपर ही अपना ध्यान लगाया था और खोटी बातें ही उसके चित्तमें घर कर गई थीं, बस इसीके मायने संस्कार है। अचेतनमें जो संस्कार बोला जाता है वह संस्कार क्या है कि प्रथम ही बारमें पदार्थमें इतनी तीव्र पद्धतिको लेकर क्रिया बनी कि जिसके बाद उसमें यह क्रिया चलती रहती है। अब देखिये! वह उस की ही पद्धति है तभी जितनी पद्धतिसे उसमें क्रिया बनी उस पद्धतिके अनुसार ही वह चीज आगे चली और जाकर समाप्त हो गयी। संस्कार नामका कोई अलगसे गुण नहीं है जिसका सम्बन्ध होकर फिर पदार्थमें क्रिया होती हो। संस्कार तो क्रियाकी विशेषताका ही नाम है।

द्रव्य गुण आदिकी चर्चाका मूल आधार व प्रयोजन—यह सब प्रकरण सामान्य विशेषात्मक पदार्थके विरोधमें और विरोधके निराकरणमें चल रहा है। आप जानेंगे कि इन सब कथनोंका मूल आधार कितना प्रयोजनीभूत था। जब तक हम पदार्थोंका सही परिचय न पायेंगे तब तक अपना हित करनेमें हम सफल नहीं हो सकते। इतना तो जानना ही होगा कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें परिपूर्ण स्वतंत्र है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और उत्पाद व्यय ध्रौव्य करने वाला है । प्रत्येक पदार्थ नवीन पर्यायको उत्पन्न करता है, पुरानी पर्यायको विलीन करता है और फिर भी पदार्थ वहीका वही रहता है । इतनी बात माने बिना आप अपने हितका मार्ग नहीं निकाल सकते । यही आधार है । हम अपने आपके बारेमें तभी तो सोचते हैं कि हमको कल्याण करना चाहिए । हम अब तक बहुत बरबाद रहे, अब तो हमें सम्हलना चाहिए यह बात हम तब ही तो सोच सकते हैं जब यह श्रद्धा हो कि हम एक पदार्थ हैं और हममें नवीन पर्याय बनती है, पुरानी पर्याय विलीन होती है । बरबादकी परिणति हमारी खतम हो सकती है और आबादीकी परिणति हममें उत्पन्न हो सकती है । जब तक यह बात चित्तमें न हो तब तक हम कल्याणका नाम ही कैसे ले सकेंगे ? अब नवीन पर्यायकी उत्पत्ति होना पुरानी पर्यायकी विलीनता होना यह तो विशेष धर्म है । एक नवीन विशेष बात हुई, पहिली विशेष बात समाप्त हुई और यह विशेष बात किसमें हुई ? उस एक ही आत्मा में । तो हम कैसे जानें कि यही एक आत्मा है । तो जिस सामान्य धर्मसे, जिस चैतन्यस्वरूपसे जानते हैं कि हम यही एक आत्मा हैं और हममें यह नवीन पर्याय उत्पन्न हुई है पुरानी पर्याय विलीन हुई है, तो जिस स्वभावसे हमने अपने आपको समझ पाया मैं वही एक हूं, उसीका नाम सामान्य है । जो एकत्व प्रत्ययका कारण बने सो है सामान्य और जो अनेकत्वका कारण बने वह है विशेष । पर्यायें हैं विशेष और स्वरूप है सामान्य । तो स्वभाव और पर्याय इनसे तादात्मक पदार्थ हुआ करते हैं ।

पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकताके परिचयसे आत्महितके लिये ज्ञानज्योतिके उदयका अवतार—प्रत्येक पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकताको जाननेके बाद फिर हम पदार्थोंमें यह भी तो समझते हैं कि सामान्य विशेषात्मक यह पदार्थ स्वय अपने आपमें परिपूर्ण है । इसकी कोई बात इससे बाहर नहीं । सामान्य विशेषात्मक यह मैं आत्मा अपने आपमें ही परिपूर्ण हूं । मेरी बात मेरेसे बाहर नहीं । अब तक हमने भाव करनेके सिवाय दूसरा काम किया ही नहीं । लोग कहते हैं कि हमने धन कमाया, परिवारका पालन पोषण किया, और और भी अनेक प्रकारके काम किए, पर जरा भली भाँति विचारो तो सही । एक अपने भावोंके सिवाय अन्य कुछ किसीने किया ही नहीं । हम आप सभी केवल अपने भाव भर बनाते हैं । हम आप को शान्ति मिले अथवा अशान्ति, यह अपने भावोंपर ही निर्भर है । अब अपने इन भावोंमें छटनी कर लीजिए । जो भाव शान्तिके कारणभूत हों उनको अपना लीजिए और जो भाव अशान्तिके कारणभूत हों उनको छोड़ दीजिये । तो बताया जा रहा था कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं । उसके विरोधमें विशेषवादी कह रहा था कि सामान्य अलग है, विशेष अलग है, गुण अलग है । कर्म अलग है, जब यों कहा तो उनकी भी बात सुनना चाहिए और उनकी मीमांसा भी करना चाहिए । इसी प्रतिवादपर इस समय चर्चा की जा रही है । विशेषवादी २४ गुण मानते हैं और उनका क्रमसे विचार चल रहा है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर्मनामक कारणमें वेगके जीवन मरणकी समस्यापर शंका समाधान विशेषवादमें संस्कार नामक भी गुण कहा गया है और उसके तीन भेद किए गए हैं, वेग, भावना और स्थितस्थापक तो स प्रसंगमें वेगके सम्बन्धमें आपत्तियां दी जा रही हैं। यदि लोकमें वेग नामका गुण है और उस वेगके समवायसे पदार्थोंमें क्रिया होती है तब फिर सदैव क्यों नहीं पदार्थोंमें क्रिया होती क्योंकि वह गुण नित्य है सदा मौजूद है और जिसमें वेगको समवाय किया जाता है ऐसा पदार्थ भी सदा मौजूद है। जैसे कि बाण सदा है और वेग भी सदा है तब फिर क्यों नहीं बाणमें निरन्तर क्रिया ही होती रहती है। इसपर शंकाकार कहता है कि पहिले बाणमें वेगके समवाय से क्रिया हुई और कुछ दूर चलनेके बाद वायु आदिकके संयोगसे बाणका वेग निर्बल हुआ, समाप्त हुआ और वह बाण गिर गया। अब गिरनेके बाद क्यों नहीं फिर वह बाण चलने लगता है ? इसका कारण यह है कि कर्म नामका कारण पीछे उसमें लगे तब वह चले अब तो गिर गया है जब तक उसको दुबारा नहीं चलाया जाता। याने क्रिया नामका कारण जब उसमें दुबारा नहीं आता तब तक नहीं चल सकता है। तो समाधानमें कहते हैं कि यह उत्तर भी योग्य नहीं है, क्योंकि कर्म नामके कारणका पीछे अन्यथापन हो जाना मानते पहिले तो क्रिया जीवित थी और उससे बाण चलता रहा था। अब क्रिया खतम हो गयी तो उसके बाद क्रियामें अब जान न रही, अन्यथापन आ गया तो उसमें कारण क्या रहा ? जब सारे कारण मौजूद हैं। जिस पदार्थको चलना है, जिसमें क्रिया होनी है उसे कहेंगे समवायि कारण। तो समवायि कारण भी मौजूद है। वेग नामका गुण भी मौजूद है, फिर कर्म क्यों नहीं जीवित हो जाता ? अन्यथापन कैसे आ गया ?

आकाशप्रभूत प्रदेशसंयोगसे वेगनाशके सम्बन्धमें शंका समाधान—अब शंकाकार कहता है कि धनुर्धारीने बाण चलाया और चला वह वेग नामके गुणके समवायसे। जब बहुत आकाशप्रदेशोंसे संयोग बन गया बाणका तो बहुत आकाश प्रदेशके संयोग होनेके बाद संस्कार नष्ट हो जाता है। इस कारण बाण गिर जाता है ? जिसे लोकव्यवहारमें कहते हैं कि वह बाण बहुत दूर तक चला। उसके बाद अब उसमें संस्कार न रहा, गिर गया। उसको इन शब्दोंमें कहिये कि बाणने बहुतसे आकाश प्रदेशोंका संयोग किया। और जब बहुत आकाश प्रदेशोंका संयोग हुआ तो उसमें संस्कार न रहा और वह गिर गया। जैसे कोई आदमी किसी भीड़में से गुजर रहा है तो अनेक पुरुषोंसे मुठभेड़ होती जाती है। वह बहुतसे लोगोंको हटाता हुआ आगे बढ़ता जाता है। और, बहुत-बहुत पुरुषोंसे मुठभेड़ होनेसे उसकी हिम्मत थक जाती है। अब कहाँ तक क्या किया जाय ? यों ही बाणने जब बहुतसे आकाश प्रदेशोंका संयोग कर लिया तो बाणमें संस्कार भी नष्ट हो गया तो अब वह बाण गिर जाता है। उत्तरमें कहते हैं कि भाई संस्कार तो एक स्वभाव है। संस्कार एक है और एक ही स्वभाव वाला है ऐसा विशेषवादमें माना गया है। तो एक स्वभाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संस्कारमें जब एक स्वभावका ही संस्कार है तो पहिलेकी तरह पीछे भी संस्कारका विनाश न होना चाहिये। जैसे बाण छोड़ा गया तो जो संस्कार पहिले रहा वह अब आगे भी रहना चाहिए, हमेशा रहना चाहिये, क्योंकि संस्कार एक स्वभाव माना है। नित्य माना है। जो पदार्थ नित्य होता है उसका स्वभाव एक ही किस्मका होता है। तो जब उस संस्कारका काम चलानेका है तो फिर चलाते ही रहना चाहिये। इस कारण जो वेग नामक संस्कारके माननेमें आपत्तियाँ आती हैं उनका निवारण न किया जा सका।

आकाशप्रभृत प्रदेशसंयोगके कारण वेग नाशकी युक्तिकी असिद्धि—अब वेग नामक संस्कार गुणमें अन्य आपत्तियाँ देखिये! विशेषवादने आकाशको निरंश माना है। आकाशमें अवयव नहीं है किन्तु एक है, निरवयव है। जब आकाश में अवयव ही नही तो यह कहना कैसे युक्त है कि बाणने आकाशके बहुतसे प्रदेशोंका संयोग कर लिया। सो उसमें अब संस्कार न रहा। आकाशमें प्रदेश माना ही नही है। आकाशको निरंश माना गया है। और, जब बहुत प्रदेश नही है आकाशमें, तो बाणने उनका संयोग भी न कर पाया। और फिर संस्कारका विनाश भी न होना चाहिए। देखिये कल्पना कारीगरसे रचे गए आकाशके प्रदेशोंमें संयोगका भेदकपना होना मानना कि याने यहाँके आकाशप्रदेशका संयोग न रहा आगे अन्य आकाश प्रदेशका संयोग बनना मानना, इस तरह उन संस्कारोंके क्षयका कारण बताना कि बहुतसे आकाश प्रदेशोंसे, भीड़से छू गया तो थक गया वह बाण, अब उसमें संस्कार नष्ट हो गया, ये सब बातें तो बहुत दूर ही पड़ी रहना चाहिए। जब आकाशमें प्रदेश ही नही है तो कहांसे संयोग और संस्कारका क्षय हो? इससे संस्कार नामक गुण का जो पृथक् प्रकार बताया है और उससे पदार्थोंमें क्रिया होती रहती बताया है वह सब अयुक्त प्रतीत होता है।

क्रियाके संस्कारका अन्वेषण—अब देखिये किसी चक्रको खूब चलाया और चला करके छोड़ दिया तिसपर भी चक्र चलता रहता है तो उसमें कारण संस्कार ही तो बताया जायगा। सब लोग कह देंगे कि अब यह अपने संस्कारसे चल रहा है। तो संस्कार शब्दका प्रयोग उचित है, लेकिन संस्कारका स्वरूप क्या है इस पर दृष्टि दो। उस चक्रमें जो वेगने क्रिया की तो उसकी क्रियाका जो वेग है, क्रिया की तो उसकी क्रियाका जो वेग है। क्रिया की जो तीव्रता है बस उसीका नाम संस्कार है। क्रियाकी वह तीव्रता कितनी है कि कितनी देर तक उसको भ्रमाता रहेगा। यह उस क्रियामें ही चीज है याने क्रियासे क्रिया चली। उसीका नाम संस्कार है। संस्कार नामका कोई एक अलगसे गुण हो। सर्वव्यापक हो, नित्य हो और उस के सम्बन्ध जुटते फिरें, ऐसा एक व्यापक रूपसे ढूंढना वह गलत है। जिस पदार्थमें काम हो रहा है उस ही पदार्थमें तुम संस्कार ढूंढो। अब एक संस्कार सारी दुनियामें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मानलो। और वह नित्य संस्कार एक स्वभावी संस्कार सब पदार्थोंमें काम करा रहा है तो यह बात नहीं बनने की, जिस पदार्थमें क्रिया हो रही है उस ही पदार्थमें संस्कार की छाँट करे कि इसमें किस तरहका संस्कार है तो विदित हो जायगा कि उस पदार्थ में जो एक विशेष प्रकारकी क्रिया होती रह रही है बस उसका नाम संस्कार है जिस क्रियाके बाद क्रिया चलती रहती है। तो वेग नामका कोई संस्कार गुण नहीं, सो वह पदार्थोंकी क्रियाका कारण बने यह बात सिद्ध नहीं हो सकती।

भावनात्मक संस्कारके द्वितीय भेदका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—अब शंकाकार कहता है कि संस्कारका दूसरा भेद है भावना नामका संस्कार देखो! जीवमें कितना काम कराता रहता है। कहते हैं ना कि इस पुरुषमें ऐसा संस्कार पड़ा है कि वह अपने अच्छे कामको करता जायगा और उससे ऊबेगा नहीं। संस्कार पड़ा है। इस बच्चेमें बचपनसे धर्मका संस्कार पड़ा है तभी तो देखो! अब तक ध्यान, पूजा, सामायिक आदि धार्मिक कार्योंमें इसका चित्त लगा रहता है। तो संस्कार जीवोंमें भी होता है। और उसका नाम है भावना। तो संस्कार गुण कैसे नहीं है? संस्कार गुणके ही कारण बच्चे लोग जवानीमें भी सम्हले रहते हैं। तो भावना नामक संस्कार है और वह गुण नित्य है, सर्वव्यापक है। उसका जब समवाय सम्बन्ध होता है तब जीवोंमें अच्छी क्रिया होती है। किसीका बुरी भावनारूप संस्कार हो गया तो उसकी बुरी परिणति, क्रिया बनती रहेगी। तो इस तरह २१ वाँ जो संस्कार नामक गुण है उसकी अनुभूतिसे भी सिद्धि होती है।

भावनात्मक संस्कारकी यथार्थ रूपरेखा—समाधानमें कहते हैं कि भावनात्मक जो संस्कार बताया है वह हमें अनिष्ट नहीं है, इष्ट है, उसे हम भी मानते हैं, पर वह भावना नामक संस्कार है क्या? धारणा नामक मतिज्ञान है। पहिले पहिले अनुभवसे सामर्थ्य प्राप्त हुई है। जिसे ऐसे आत्माका एक अभिन्न धारणा नामक ज्ञान है, जो स्मृतिका कारण बनता है उस हीका नाम संस्कार है। यह संस्कार कोई नित्य गुण नहीं है, सर्वव्यापक एक नहीं है, किन्तु जिस जीवने किसी पदार्थको जानकर उसकी बारबार भावना की, उसकी बारबार जानकारी बनायी, उसमें उपयोगको कुछ जरा निरन्तर बनाये रहा तो एक धारणा नामक **संस्कार** बन जाता है। संस्कार कहो, भावना कहो, धारणा कहो इन सबका एक **ही अर्थ है**। ये जीव जो संसारमें रुल रहे हैं सबमें मतिज्ञान पाया जाता है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दोनोंके दोनों समस्त छद्मस्थ जीवोंमें पाये जाते हैं। मतिज्ञानका अर्थ है इन्द्रिय और मनके निमित्त से जो ज्ञान हो वह मतिज्ञान है और श्रुतज्ञानका अर्थ है—मतिज्ञानसे जाने गए पदार्थ में जितना मतिज्ञानसे जाने उससे और अधिक कुछ अन्य बातें जान लेना सो श्रुतज्ञान है। जैसे आँखें खोलते ही पदार्थ देखा और उसमें रूपका ज्ञान हुआ। जैसे जाना कि यह हरा है, तो यह जानना श्रुत ज्ञान है। जाना तो हरेको ही। पर हरा है इस

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस प्रकारका विकल्प जब तक नहीं उठा और प्रतिभास रहा उस स्थितिको कहते हैं मतिज्ञान। मतिज्ञान निर्विकल्प ज्ञान है, श्रुतज्ञान सविकल्प ज्ञान है। तो मतिज्ञानसे जाना रूप। स्थूल रूपसे समझ लिया, जान लिया कि यह रूप है, या कुछ भी घटना मतिज्ञानसे जान ली। उस ज्ञानके सद्भाव आवान्तर सत्का सद्भावरूप ज्ञान किया। फिर उसमें निर्णय किया कि यह ही है। फिर उसकी धारणा बन गयी। एक स्थूल दृष्टान्त देखिये! जैसे कोई पुरुष सामने आ रहा है। पहिले तो समझा कि यह पुरुष फिर समझा कि यहीका है और निर्णय कर लिया कि यह तो यहींका अमुक पुरुष है। फिर उसे कुछ देर तक जानता रहे या अभ्यासकी वजहसे एक बारमें ही जाना, अब उसके उपयोगमें धारणा बन गयी। धारणाका अर्थ है कालान्तरमें भी न भूलना। किसी पुरुषको सुबह देखा या जब मौका आया तो वह धारणा जग जाती है और स्मृति हो जाती है कि यह पुरुष सुबह मिला था। तो स्मृतिज्ञानका कारणभूत है संस्कार। संस्कारके जगाये जानेसे होता स्मरण। उसी संस्कारका नाम है। धारणा। धारणासे भिन्न अन्य कोई संस्कार नामका गुण नहीं है।

धारणापर नाम संस्कारका व्यवहारमें विशिष्ट सहयोग—हम आपका धारणा ज्ञान कितना उपयोगी बन रहा है। शास्त्रोंका अर्थ लगाते हैं, यह बात कल यहां तक सुनी थी, अब इसके आगे यहाँ सुनी जा रही है। ये सब धारणायें हैं। अन्य बात भी छोड़ो—कोई शब्द सुनकर हम उसका अर्थ समझ लेते हैं तो क्या उसमें धारणा काम नहीं कर रही है? बेन्च कहा तो यह अर्थ कहा गया, क्या यह धारणा के बिना समझ रखा है? बेन्च शब्द का यह अर्थ है, यही पदार्थ है ऐसी धारणा प्राय: सभी जीवोंको लगी हुई है और उसी धारणाके बलपर बड़े बड़े व्यवहार किए जाते हैं। लेन देन धारणाके बिना नहीं बन सकते। कुछ लेन देन नही भी लिखे जाते हैं उनका ख्याल रहता है। जैसे कोई पुस्तक माँगकर ले गया तो उसे कोई डायरीमें तुरन्त लिख तो नही लेता, हाँ रुपयोंका लेन देन लिख लिया जाता है। तो छोटी मोटी चीजोंके लेनदेनका काम धारणासे ही चलता है। पहिले जमानेमें रुपयों का लेन देन भी न लिखा जाता था। तो उसका भी धारणासे काम चलता था। अब जब लोगोंके चित्तमें बेईमानी आने लगी तब उसके लिखनेकी पद्धति बन गई। रुपया दिया तो लिखा दिया। जब उसमें भी बेईमानी चली तो दस्तखत कराये जाने लगे, जब उसमें भी बेईमानी चलने लगी तब उसके स्टैम्प खरीदे जाने लगे। उसमें भी बेईमानी चली तब उसकी रजिस्ट्री होने लगी। जैसे जब चार्ज सम्हाला जाता है तो चार्जमें भी तो लेन देन है लेकिन उसको लिखित करके देते हैं। शंका है कि कहीं यह न कह दे कि यह चीज चार्जमें नही दी। तो लिखनेपर भी यह जो व्यवहार चलता है वह सब धारणा पूर्वक चलता है, और वह धारणा है क्या? आत्माके ज्ञान गुणकी पर्याय है। कोई ऐसा संस्कार नही है जो दुनियामें एक नित्य छाया हुआ है और जिसके सम्बन्धको जोड़कर जीवोंका व्यवहार बनाया जाता हो, किन्तु जीव स्वयं ज्ञानमय है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और उस ज्ञानका ही एक परिणमन है धारणा संस्कार । संस्कार भी पर्याय है, गुण नहीं है । पर्याय और गुणका मोटा भेद यह है कि पर्याय अनित्य होती है और गुण नित्य होता है । संस्कार क्या नष्ट नहीं होता ? नष्ट हो जाता है ।

धारणापर नाम संस्कारका कार्य – संस्कार मतिज्ञानके अवग्रह ईहा: अवाय और धारणा नामक चारभेदोंमेंसे था भेद जब हैं तक जिसका संस्कार बना हुआ है तो सारे काम किए जाते हैं । स्वप्नमें भी संस्कार काम करता है । कभी कोई खोटा स्वप्न पाप वाला भी आ रहा हो तो वहाँपर भी संस्कार जो पहिले अच्छा बनाया हुआ है वह काम देता है और स्वप्नमें भी विवेककी बात जागृत होती है और विवेकके कारण वह छोटे पापोंसे बच जाता है । संस्कार बेहोशीमें भी काम देता है । कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि जो पुरुष बेहोश हो जाता है और जिसका बेहोशीमें मरण होता है उसकी गति बिगड़ जाती है, पर यह नियम नहीं है । बेहोश पुरुष भी यदि ज्ञानी है उसका संस्कार अच्छा है तो उस बेहोशीमें भी अन्दर ही अन्दर वह बराबर सावधान है । अपने आत्मदर्शनमें उस सावधानीके कारण उसकी गति नहीं बिगड़ती । क्या जो बेहोश न रहें, जागते ही बोल बोलकर मरें कोई विशेषता प्राप्त करली ? यदि उनका संस्कार भला है तो बोल करके मरे तो क्या, बेहोशीमें मरे तो क्या ? उससे कोई बिगाड़ नहीं है । बेहोशीमें होता क्या है ? ज्ञान बेहोश नहीं होता, किन्तु इन्द्रियाँ बेहोश होती हैं । वही इन्द्रियज ज्ञात हो पाता है, मगर इन्द्रियज ज्ञानसे वहाँ मतलब क्या है ? इन्द्रियज्ञान न हुआ न सही, और किसी तरह यह भी कह सकते हैं कि अगर बेहोशीके कारणसे इन्द्रियज ज्ञान नहीं हो रहा तो उसको अपनी अन्त: सावधानी मिलनेमें बड़ा सहयोग ही उससे मिल रहा है । वहाँ बाहरी बातोंका ज्ञान और उलझाव न हो सका तो संस्कार धारणा ऐसे दृढ़तम मतिज्ञानकी परिणति है कि जिसके कारण इस जीवको बहुत कुछ आत्महितके लिए सहयोग मिल सकता है ।

संस्कार एवं सर्व विशेषोंका अनिषेध, किन्तु यथावत् प्रत्ययकी आवश्यकता -- भावना नामक संस्कार है और वह उत्पन्न किया जाता है बार बारका उपयोग लगानेसे । अब किसी जीवके तो ऐसी विशिष्ट योग्यता है कि कुछ ही बार उपयोग लगानेसे धारणा बन गयी । कुछ बहुत बहुत उपयोग लगाना होता है तब धारणा बनती है । बच्चोंमें ही देखो ! कितने अन्तर पाये जाते हैं । कोई बालक एक ही बात ध्यानसे सुनले तो उसे धारणा बन जाती है, कोई दो तीन बार उसमें उपयोग लगायें तो धारणा बन जाती है और कुछ बालक ऐसे होते हैं जो पचासों बार भी उपयोग लगाते हैं, पर धारणा नहीं बन पाती है । तो ज्ञानावरणका जैसा जिसका क्षयोपशम है उसके अनुसार उसमें उस प्रकारकी धारणा बन जाया करती है । तो संस्कार नामक गुणकी बात जो विशेषवादमें कहा है तो संस्कारको मना नहीं किया जा रहा, बल्कि जो जो भी कहा है गुणोंके सम्बन्धमें उनको किसीको भी मना नहीं किया जा सकता । मगर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वे किस रूपसे हैं ? गुण रूपसे कि पर्याय रूपसे ? उनका क्या स्वरूप है उसका विश्लेषण किया जा रहा है । तो इसी प्रकार यह संस्कार भावना नामक कोई एक नित्य एक स्वभावी गुण नही है, किन्तु ज्ञानावरणके क्षयोपशमके अनुसार जिस जीवको जितनी योग्यता मिली है वह अपने मतिज्ञानमें उतनी ही धारणा बनाता है और अपने संस्कार बनाता है । तो भावना नामक संस्कार तो अनिष्ट नही, किन्तु कोई पृथकभूत गुण माना जाय, जीवसे अलग कोई गुण है भावना नामक सो बात नही है । वह जीव ही की चीज है । जिस पदार्थमें संस्कार है वह संस्कार उस पदार्थकी ही चीज है । अब उसमें यह छटनी करें कि वह गुण है कि पर्याय है, किस ढंगका है सो तो उत्तर सही आ जायगा, लेकिन पदार्थसे भिन्न कहीं अलग संस्कार नामका गुण कहा जाय और उसका सम्बन्ध कर करके काम निकाला जाय यह बात अयुक्त है ।

स्थितस्थापक संस्कारकी मीमांसा—शंकाकार कहता है कि एक स्थापक नामका संस्कार भी गुणरूपसे सिद्ध है । स्थितस्थापकका अर्थ यह है कि जो पदार्थ स्थित है, ठहरा हुवा है उस पदार्थको उस ही प्रकारसे स्थापित किये रहना । इसका कारण स्थितस्थापक संस्कार नामका गुण है । और जिस पदार्थमें इस संस्कारका जब शैथिल्य होता है तो वह पदार्थ चलित होने लगता है । स्थित हुआ पदार्थ स्थिरतासे स्थिर रहे ऐसा उसमें एक स्थितस्थापक नामका संस्कार है और यह संस्कार गुणका तीसरा प्रकार है । समाधानमें कहते हैं कि स्थितस्थापकरूप संस्कार तो असम्भव ही है । अच्छा बताओ कि वह स्थितस्थापक संस्कार किस पदार्थको स्थापित करता है ? इस संस्कारका कार्य तो यही है ना कि पदार्थको ही वैसीको ही वैसी स्थिति बनाये रखना । तो क्या स्थितस्थापक सस्कार अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको स्थित बनाये रखना है या स्थित स्वभाव वाले पदार्थको यह संस्कार स्थित बनाये रखता है ? स्थित पदार्थको ज्योंका त्यों स्थिर बनाये रखना वहीका वही, वैसा ही ठहरा हुआ बनाये रखना यह जो गुण है सो स्थिर स्वभाव वाले पदार्थको ठहराये रहता है या अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको ठहराये रहना है ?

स्थित स्थापक संस्कार गुणको अस्थिर स्वभाव पदार्थकी स्थितिका कारण माननेपर अनिष्टापत्ति—यदि कहो कि अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको यह संस्कार ठहराये रहता है तो यह तो बिल्कुल विरुद्ध बात है । पदार्थ तो अस्थिर स्वभाव वाला है मायने ठहर नहीं रहा है, चलित होता रहे ऐसे स्वभाव वाला है और उस पदार्थको स्थितस्थापक संस्कार ठहराये रखता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कारने पदार्थके स्वभावको बदल दिया । लेकिन पदार्थका जो स्वभाव है । कोटि उपाय किये जानेपर भी बदला नहीं जा सकता । अन्यथा कोई पदार्थ व्यवस्था ही न रहेगी । आत्माका चैतन्यस्वभाव है वह भी कभी बदल जायगा । जिस जिस पदार्थका गुणका, कर्मका जो जो भी स्वभाव है वह बदलता ही जायगा तो फिर पदार्थ ही क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहेंगे ? तो अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको स्थित स्थापक नामक संस्कार ठहराये रहता है यह बात नहीं बनती। और, यदि अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको संस्कार ठहरा दे तो बिजलीको क्यों नहीं ठहरा देता ? बिजली अस्थिर स्वभाव वाली है तो उसे भी ठहरा दे लेकिन वह दूसरे क्षण भी नही ठहरती। फिर तीसरा दोष यह है कि एक क्षणके बाद वह पदार्थ तो मिलेगा ही नहीं क्योंकि वह अस्थिर स्वभाव वाला है। अपना स्वभाव दूसरे क्षण रख ही नही सकता। अर्थात् उसका विनाश हो जाता है। तो एक क्षणके बाद पदार्थ जब रहा ही नहीं, उसका स्वभाव हो गया तो यह स्थित स्थापक संस्कार फिर किसको ठहराये ? और अगर ठहरा दे तो अस्थिर स्वभाव न रहा फिर पदार्थका। देखो—अब ठहर गया, स्थिर हो गया। इससे अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको स्थित स्थापक नामका संस्कार ठहराये रहता है यह पक्ष सिद्ध नही होता।

स्थित स्थापक संस्कार गुणको स्थिरस्वभाव पदार्थकी स्थितिका कारण माननेपर संस्कारकी अकिञ्चितकता और असिद्धि—अब यदि दूसरा पक्ष कहोगे याने स्थिरस्वभाव वाले पदार्थको स्थित स्थापक नामक संस्कार ठहराये रहता है यह संस्कार उस पदार्थको वहींका वहीं ठहराये रहता है, उस ही ढंगका बनाये रहता है जो पदार्थ स्वयं स्थिर स्वभाव रखता है। तो यहाँ यह बात विचारनेकी है कि जब पदार्थ ही स्वयं स्थिर स्वभाव वाला है तो उसको ठहरानेके लिये अलगसे स्थित स्थापक संस्कारकी कल्पनाकी क्या आवश्यकता हुई ? पदार्थ स्वयं स्थिर स्वभाव वाले हैं और वे वहाँ स्थिरतासे रहेंगे ही, फिर स्थित स्थापक संस्कारकी कल्पना की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह पदार्थ अकिञ्चितकर हो गया। पदार्थ जब स्वभावसे उस ही प्रकार ठहरा हुआ है फिर और कोई क्या करे ? स्थित स्थापकका फिर काम क्या रहा ? वह अकिञ्चितकर हो गया। इस कारण यह बात मानना श्रेष्ठ है कि यह पदार्थ अपने कारणकी वजहसे जिस जिस प्रकारके रूपसे इसमें जो परिणति होती है, दशा बनती है उस हीका नाम स्थिर स्थापक संस्कार है अन्य और कुछ नही है। उसको किसी नामसे कह लो। पदार्थमें अपने ही कारणसे जिस प्रकार परिणमनकी बात पड़ी हुई है उस प्रकार वह पदार्थ होता ही है। तो उसमें अब भिन्न कोई नवीन संस्कार लगाना यह बिल्कुल व्यर्थ है। तो संस्कार नामक गुण भी सिद्ध न हो सका।

शंकाकार द्वारा धर्म व अधर्मनामक गुणके सद्भावका प्रस्ताव—अब शंकाकार कहता है कि धर्म और अधर्म नामके भी तो गुण हैं। देखो—सारा जहान धर्म अधर्मके ही आधीन होकर सुख और दुःख भोग रहा है। धर्मका फल है सुख देना, स्वर्गोंमें उत्पन्न करना और अधर्मका फल है दुःख देना, नरकादिक गतियोंमें उत्पन्न करना। तो जिस धर्म अधर्मका सारा ही ठाठ यहाँ नजर आ रहा है उस धर्म

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अधर्म नामक गुणको कैसे मना किया जा सकता है ? लोग तो इष्ट वस्तुवोंके प्राप्त करनेके लिए अधिकाधिक प्रयत्न करके हैरान होते हैं फिर भी उनकी प्राप्ति नहीं होती तो क्यों प्राप्ति नहीं होती कि उनके पास अभी धर्म गुणका सम्बन्ध नहीं बना है और जो दरिद्र हैं, पापी हैं, अकुलीन हैं, दुःख भोगते हैं उनके अधर्म गुणका सम्बन्ध बना हुआ है इसलिए दुःखी हैं। तो धर्म अधर्म नामक गुणके वशमें यह सारा संसार पड़ा हुआ है। इस धर्म अधर्म गुणका निषेध नहीं किया जा सकता। बहुत-बहुत दूरकी चीजें खिचती हुई चली आयें यह धर्मगुणका ही तो प्रताप है। बहुत दूरसे अनिष्ट वस्तुवें शत्रु खिचकर चले आयें और उनको बरबाद करदें यह अधर्म गुणका ही तो प्रभाव है। अन्यथा बतलावो कि बहुत दूर रहने वाले इष्ट अनिष्ट पदार्थ, सुखकारी और दुःखकारी पदार्थ किसकी प्रेरणासे खिचकर इस धर्मी और अधर्मीको सुख दुख देनेके लिए आते हैं ? अतः मानना पड़ेगा कि कोई धर्म और अधर्म गुण है।

विशेषवादोक्त धर्म अधर्म नामक अदृष्टके गुणत्वका निराकरण— अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि धर्म और अधर्म ये अदृष्टके भेद हैं। इन्हें भाग्य कहो तो ये धर्म अधर्म नामक अदृष्ट आत्माका गुण नहीं है। यह बात पहिले भी बहुत विस्तारसे बता दी गई थी कि धर्म और अधर्म जो अदृष्ट हैं वे आत्मगुण नहीं हैं किन्तु एक पौद्गलिक पिण्ड हैं। इस लोकमें प्रत्येक संसारी जीवके साथ स्वभावसे ही ऐसा कार्माणवर्गनाओंका ढेर लगा हुआ है कि जो इस भवके बाद आगे आगे भवमें भी जीवके साथ जायगा। वे कर्म तो साथ जायेंगे ही जो बँधे हुए है लेकिन है विस्रसोपचय कार्माणवर्गणायें भी इस जीवके साथ जाती हैं। जैसे कभी जंगलमें घूमते हुएमें मक्खियोंका झुण्ड घूमने वाले पुरुषके सिरपर मँडराने लगता है। और भी नई मक्खियां उस झुण्डमें आकर मिल जाती हैं। जहां जहां वह पुरुष जाता है वहाँ वहाँ वे मक्खियाँ भी जाती हैं और वह मक्खियोंका झुण्ड उस पुरुषके लिए बेचैनीका कारण बन जाता है ऐसे ही ये विस्रसोपचय परमाणु भी, कार्माणवर्गणाके स्कंध जो इसमें बद्ध हैं वे भी जीवके साथ इस तरह लगे हुए हैं कि जहाँ जाये यह जीव वहां ये कार्माणवर्गणायें भी जाती हैं और जो कर्म बंधे हैं वे भी जाते हैं वह है अदृष्ट। तो अदृष्ट भाग्यका नाम है। वह जीवका गुण नहीं है, आत्मासे पृथक् पदार्थ है, पौद्गलिक है। अदृष्टका और आत्माके विकारका निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध तो है पर द्रव्य पृथक-पृथक है। भाग्य गुण नहीं है किन्तु भाग्य स्वयं द्रव्य है। इसको रूढि में धर्म और अधर्मके नामसे कहा जा रहा है। उसका सही नाम पुण्य और पाप है।

धर्म अधर्मकी विशुद्ध व्याख्या— धर्म और अधर्मकी व्याख्या यह है कि आत्माका स्वभाव हो सो धर्म है और जो आत्माका स्वभाव नहीं किन्तु विभाव है सो अधर्म है। पुण्य पापका अर्थ है आत्माके जो शुभ विकार हैं उनका नाम है पुण्य और आत्माके जो अशुभ विकार हैं उनका नाम है पाप। और, उन शुभविकारोंके कारणसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो कार्माणवर्गणायें बंधी, उनमें जो शुभ प्रकृतिपना जिसमें आया है वह कहलाता है पुण्य कर्म और जिसमें पाप प्रकृतिपना आया है, खोंटा अनुमान आया है उन्हें कहते हैं पापकर्म। तो पुण्यकर्म, पापकर्म तो संसारी जीवोंके साथ लगकर उन्हें इस संसारमें भ्रमाते रहते हैं और धर्म इस जीवको संस्कारके दुःखोंसे छुटाकर उत्तम सुखमें पहुँचा देता है। इस दृष्टिमें पुण्य है सो भी अधर्म है, पाप है सो भी अधर्म है। शुभोपयोग है वह भी आत्माका स्वभाव नहीं है और अशुभोपयोग है वह भी आत्माका स्वभाव नहीं है। धर्म तो धर्म है अचलित है, धारणपालनरूप नहीं है। मूल स्वरूपको देखिये! आत्काका जो स्वभाव है वह धर्म है। वह धर्म धारण, पालनरूप नहीं। वह तो स्वभावमात्र है। अब उस स्वभावमात्रकी जो दृष्टि करता है वह जीव दृष्टि करने रूप परिणतिसे धर्मपालन कर रहा है। धर्मपालन कहते किसे हैं? स्वभावको दृष्टिमें लेना स्वभावमें उपयोग रमाना वह है धर्मपालन। धर्मपालन धर्म नहीं, धर्म तो स्वभावका नाम है, किन्तु स्वभावकी दृष्टि करना उसका नाम धर्मपालन है। परिणमन स्वयं धर्म नहीं है पर्याय है, स्वभाव नहीं है, तो धर्म और धर्मपालन ये दो बातें हैं अब धर्मपालनमें भी और विस्तारसे निरखिये आत्माका जो विशुद्ध सहज चैतन्यस्वभाव है उसकी दृष्टि होना, उसमें उपयोग रमना, उसका अनुभव होना यही है धर्मपालन।

निश्चयत: और व्यवहारत: धर्मपालन—निश्चय धर्मपालनके अतिरिक्त अन्य जो कुछ भी प्रवृत्तियां हैं धर्मपालन नहीं हैं। लेकिन इस धर्मपालन रूप निश्चय परिणतिके सहायक जितने प्रवर्तन हैं उन्हें भी धर्मपालन कहते हैं और वह व्यवहारत: धर्मपालन कहलाता है। निश्चयसे आत्माके विशुद्ध सहज चैतन्यस्वभावकी दृष्टि अनुभव और रमण होना इसका नाम है धर्मपालन और इस निश्चय धर्मके पालनकी पात्रता बनाये रखने वाली जो व्यवहारकी प्रवृत्तियां हैं उन्हें कहते हैं व्यवहारधर्म। जैसे मंदिर आना, पूजा करना, स्वाध्याय करना। व्रत नियम पालन करने वालेके लिए, साक्षात् धर्मपालन करने वालेके लिए साक्षात् धर्मपालनकी पात्रता बनाये रखना इस व्यवहार धर्मका काम है। इन धर्मोंके करते हुए बीच-बीच जब जब भी आत्मस्वभावपर दृष्टि जगे तब वह धर्मपालन कर रहा है। तो इस दिशामें ऐसा कह सकते हैं कि जैसे युद्धमें सुभट ढाल और तलवार दोका प्रयोग किया करते हैं। पहिले समय में युद्धमें सैनिक लोग सजकर, कवच पहिनकर ढाल और तलवार लेकर युद्ध क्षेत्रमें उतरते थे। तलवारका काम था शत्रुका घात करना, विजय प्राप्त करना। और ढाल का काम था शत्रुका वार रोकना। ढाल शत्रुका घात नहीं करती बल्कि वारको रोकती है और तलवार शत्रुका घात करती है। इसी तरह व्यवहार धर्म तो ढालकी भांति है और निश्चय धर्म तलवारकी भांति है। जीवके शत्रु हैं विषय कषाय। पञ्चेन्द्रियके विषयोंमें उपयोग रमना, लोकेषणा आदिके लिए स्वच्छन्द प्रवर्तन होना ये सब जीवका साक्षात् घात करने वाले हैं। तो इन शत्रुवोंका घात निश्चय धर्मसे होता है। साधु संत जनोंको सारी जिन्दगी भर और काम करनेको है ही क्या? यही एक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

काम है कि आत्माके शुद्धचित स्वरूपको निरखना और निरख निरखकर तृप्त होते रहना। यह काम साधु संतजन तब तक करते ही रहेंगे जब तक निर्विकल्प स्थिति नहीं प्राप्त होती निर्विकल्प स्थिति होनेपर फिर इस परिश्रमकी जरूरत नहीं रहती वे तो स्वयं अपने स्वभावमें समा गए हैं। साधु संतजन इसी एक कामको करनेके लिए सर्व कुछ परित्याग करके निर्ग्रंथ स्थितिमें आये हैं। तो जब यह धर्मपरिणाम होता है अपने आपके स्वभावकी दृष्टि जगती है उसके निकट उपयोग रमता है तो इस जीवके जो एक अलौकिक आनन्द प्रकट होता है उस आनन्दमें यह सामर्थ्य है कि विषय कषाय विकल्पोंको तत्काल दूर कर देता है। तो निश्चय धर्मका काम हुआ विषय कषायविकार शत्रुवोंको नष्ट कर देना। और व्यवहार धर्मका काम है कि अपना उपयोग ऐसा शुभ की ओर बनादें कि विषय कषायोंके ये खोटे प्रहार इस आत्मापर न लग सकें। पूजन करते हैं, स्वाध्याय करते हैं तो उपयोगको हो तो विषयकषाय, भोग-उपभोग, रागद्वेष के विशेष प्रसङ्ग इन सबसे मोड़ लिए हैं ना! तो यह ढालकी तरह व्यवहार धर्म इन जीवोंकी रक्षा कर रहा है, इन्हें नहीं सकते वे दुष्ट परिणाम। अब व्यवहार धर्मसे रक्षित जीव बेखटके निरंश होता हुआ अपने आपके भीतर निश्चय धर्मकी वृत्ति बनाले उसके लिए अब यह सहज हो गया है। जैसे ढालसे रक्षित हुआ सैनिक पद-पदपर ढालके प्रयोगसे अपनी रक्षा बनाता हुआ निशंक होकर शस्त्रप्रहारसे, युद्धसे अपनी विजय प्राप्त करे उसके लिए यह सरल हो गया है। तो धर्मपालन नाम है आत्माके सहज शुद्ध चैतन्य स्वभावके दर्शन और अनुभवनका।

धर्मपालनकी महिमा और आवश्यकता—संसारके सर्वसंकटोंसे छुटानेमें समर्थ यह धर्मपरिणमन है। लोग अपने आपमें कल्पनायें बनाते हैं कि सबसे श्रेष्ठ रोजिगार कौनसा है जिससे हम जीवनमें सुखपूर्वक रह सकें? अरे, जितना यह १०० ५० वर्षका मनुष्य जीवन है क्या यही तेरा सब कुछ है? इसके बाद जो अनन्त काल पड़ा है उस अनन्तकालमें हम कैसे अच्छी तरह रह सकें इसका कुछ भी विचार नहीं करते। और, दूसरी बात यह है कि इस जीवनमें भी सुखी शान्त रहनेके लिए बाह्य पदार्थोंके, विषयोंके कुछ कर्तव्य बना लेनेकी बात समर्थ नहीं है। जो बात जिस जिस पद्धतिमें है ही नहीं उसको कहाँसे बनाया जा सकता है? आत्माकी शान्ति है निवृत्तिमें, अपने आपके एकत्वकी दृष्टिमें। बाह्यका संसर्ग बनाकर, बाह्य सम्पर्कमें बुद्धि लगाकर शान्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है? बड़ेसे बड़े दुःखी पुरुष भी एकत्व भावनाके प्रतापसे सुखी हो गए हैं। और, बहुत विषय भोग साधन वैभव सम्पदा राज्यपाटके आरामके अन्दर रहने वाले जीव भी एक इस पर बुद्धिके कारण बड़े दुःखी हो गए हैं। किसीको इष्टवियोग हो गया। लोग बहुत-बहुत समझाते हैं, नहीं समझमें आता, पर जब कभी भी समझमें आता है, अर्थात् वह पुरुष कुछ शान्ति पाता है तो एकत्व भावना आती है चित्तमें, तब शान्ति आती है, वह भी अकेला मैं भी अकेला कबसे अकेला मैं, कबसे अकेला वह। किसीका किसीसे क्या सम्बन्ध है? हो गया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अटपट निकट। जब अपने आपके एकत्वपर दृष्टि जाती है तब उस आत्माको शान्ति प्राप्त होती है। तो ऐसे स्वभावकी दृष्टि होना धर्म है और इस स्वभावसे च्युत होकर जो कुछ इसको विकृत परिणति बनती है वह अधर्म है। धर्म है गुण, धर्म है स्वभाव और उसका दर्शन अनुभवन, पालन यह है परिणति।

अदृष्टभेदके रूपमें धर्म अधर्मकी व्याख्याकी असंगतता— धर्म अधर्म नामका जैसे विशेषवादमें माना गया है गुण, उसका सद्भाव सिद्ध नहीं है और इसी कारण विशेषवादमें जो यह वर्णन किया है कि धर्म अधर्म क्या है ? अदृष्ट नामका गुण है और जिसके धर्म और अधर्म ऐसे दो भेद हैं। और जो अपने कार्यका विरोधी है, अर्थात् अपनी कल्पना कर चुकनेके बाद मिट जाया करता है। कार्य होनेपर जो ठहर नहीं सकता। आत्मा और मनके संयोगसे उत्पन्न होता है और फल करने वाले को फल देने वाला है ऐसे आत्माके गुणका नाम है अदृष्ट, धर्म, यह बात अयुक्त कही गई है। हाँ इस तरहसे व्याख्या करें कि करने वालेको प्रिय हित मोक्षका जो कारण हो उसे तो धर्म कहते हैं और करने वालेको अप्रियपना जचनेका जो कारणभूत हो उसको अधर्म कहते हैं। अर्थात् जो दुःखका कारण है वह अधर्म है और जो संसारके समस्त संकटोंसे छुटा देनेका कारण है वह धर्म है। धर्म और अधर्म कोई व्यापक एक गुण हो और वे जगह जगहसे चीजें खींचकर इस आत्माके पास ला देते हों, इस प्रकारका कोई गुण नहीं है, किन्तु कर्मोंका ही नाम पुण्य पाप है। और, आत्माके स्वभाव और विभावका नाम धर्म अधर्म है।

शब्दके गुणत्वका निराकरण— शंकाकारका अन्तिम गुण है शब्द। शब्द को विशेषवादमें आकाशका गुण कहा गया है। जैसे कि एक सरसरी दृष्टिसे कोई निरखता है शब्दोंको सुननेके लिए, शब्दोंकी परखके लिए, तो वह आकाशमें ढूंढ़ता है, निरखता है आकाशमें ही कानोंको लगाता है तो उससे ऐसा एक अतीव साधारणजनों को भ्रम हो जाता है कि ये शब्द आकाशमें फैले हैं, आकाशके ही गुण हैं, आकाशसे ही प्रकट होते हैं, लेकिन आकाश और शब्द इन दोनोंके स्वरूपपर दृष्टि दी जाय तो इनमें बहुत भेद जच रहा है। आकाश अमूर्त है, शब्द मूर्त है। अमूर्तका गुण मूर्त नहीं हो सकता। अमूर्तसे मूर्तकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। शब्द मूर्त है यह तो अब बहुत स्पष्ट सिद्ध है। शब्दोंका छोड़ लें, भेड़ लें, अथवा शब्द भीटादिकसे छिड़ गए, शब्दोंका वायु आदिकसे अभिघात हो जाय, आगे शब्द न बढ़ सकें, अथवा तरंगोंके रूपसे एक जगहसे दूसरी जगह चले जायें, सुनाई दें, ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि शब्द मूर्तिक है। तो मूर्तिक शब्द कभी आकाशका गुण नहीं हो सकते। ये शब्द तो भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कंधोंके द्रव्य परिणमन हैं। तो यो शब्द भी गुण न रहे। सामान्यविशेषात्मक पदार्थके विरोधमें जो द्रव्य, गुण कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय नामक ६ पदार्थोंकी व्यवस्था विशेषवादके अनुसार बनाया जा रही थी, उनमेंसे द्रव्य और गुण इन दो प्रकारके पदार्थोंका निराकरण कर दिया है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शंकाकार द्वारा कर्म पदार्थके सद्भावका प्ररूपण—पदार्थ वही "है" कहला सकता है जिसमें उत्पादव्ययध्रौव्य होते हों। प्रति समय परिणमकर भी जो नित्य रहता हो पदार्थ वही है। यह पदार्थकी स्वयंकी विशेषता है। तो इसमें जो परिणमन हो रहा है उससे भी सिद्ध है कि उसमें नई अवस्थायें आती हैं और पुरानी अवस्थायें विलीन होती हैं। अब वे अवस्थायें दो तरहकी होती हैं। एक प्रदेशके हलन चलन रूप, और एक गुणोंकी परिणति रूप। जो प्रदेशके हलन चलन रूप उत्पाद हैं उसका नाम तो है क्रिया और जो गुणोंके परिणमन रूप उत्पाद है उसका नाम है गुण पर्याय वस्तुसे अभिन्न सिद्ध हो गए तो उन पर्यायोंके आधारभूत शक्ति भी वस्तुमें अभिन्न है। इस तरह पदार्थमें गुण है, क्रिया है तब उसमें सामान्य भी है और विशेष भी है। इस तरह पदार्थ ही स्वयं गुणात्मक, पर्यायात्मक, सामान्यात्मक, विशेषात्मक, सिद्ध होता है। लेकिन विशेषवादमें तो यह कुञ्जी बना ली गई है कि बुद्धिमें कुछ समझमें तो आये किसी भी तरहसे सो जितने बुद्धिभेद होंगे उतने ही पदार्थभेद मान लिये जावेंगे। जब पदार्थोंमें गुण समझमें आये तो गुण नामका भी पदार्थ कह दिया। अब क्रिया समझमें आ रही, तो क्रिया नामक पदार्थ भी विशेषवादमें कहा जा रहा है।

कर्मपदार्थके प्रकारोंमें उत्क्षेपणनामक कर्मपदार्थका वर्णन—विशेषवादी कहते हैं कि एक कर्म नामका भी पदार्थ है। कर्मके मायने यहाँ क्रिया है। और, वे ५ प्रकारके हैं उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। पदार्थ जो चलते फिरते नजर आते हैं तो यह चलन फिरन भी क्रिया है ना, और वह वास्तविक पदार्थ है। उत्क्षेपण किसे कहते हैं कि किसी चीजका ऊपरका संयोग हो और नीचेके प्रदेशमें वियोग होता जाय, ऐसी क्रियाको कहते हैं उत्क्षेपण याने फिकना। ऊपरको डला फेंका तो हुआ क्या कि ऊपरके आकाश प्रदेशका संयोग होना और नीचेके आकाश प्रदेशका वियोग होना इस तरह उसका कर्म होना और मूल स्थानसे अलग हटना इसे कहते हैं उत्क्षेपण जिसका सीधा अर्थ है फिकना। अब यह क्रिया है ना. इस क्रियाको तो स्याद्वादियोंने भी किसी न किसी ढंगमें मान रखा है—जैसे कि जीव और पुद्गलकी यह प्रदेश क्रिया है। प्रदेशका ही उस प्रकारका परिणमन द्रव्यकी ही एक अवस्था है, लेकिन विशेषवादमें इसे माना गया है कर्म पदार्थ। जैसे कि शरीरके अवयवोंमें किसी सम्बन्ध मूर्तिमान पदार्थमें आकाश प्रदेशोंके साथ ऊपर नीचे संयोग विभागका कारण बने याने ऊर्ध्व दिशाके आकाश प्रदेशमें तो संयोगका कारण बने और अधो दिशाके प्रदेशमें वियोगको बनाये ऐसा जो गुण है, ऐसा जो पदार्थ है, जिसके द्वारा यह कार्य होता है उसे कहते हैं उत्क्षेपण, जिस कर्म पदार्थने वस्तुको फेंक दिया। यहाँ मूल बात यह चल रही है कि पदार्थोंमें जो क्रिया होती है, एक जगहसे दूसरी जगह चीजका पहुँच जाना, इसमें कर्म पदार्थ काम कर रहा है।

विशेषवादोक्त अवक्षेपण और आकुञ्चननामक कर्म पदार्थका वर्णन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्क्षेपणके विपरीत होता है अवक्षेपण अवक्षेपण कहते हैं नीचेकी ओर गिरनेको । इसमें ऊपरके आकाश प्रदेशका होता है वियोग, और नीचेके आकाश प्रदेशका होता है संयोग । इसका जो कारणभूत पदार्थ है उसे कहते हैं अवक्षेपण नामका कर्म पदार्थ । जैसे कोई पूछ बैठे कि यह चीज ऊपर गयी, इसको किसने फेंका ? तो विशेषवादका उत्तर है कि उस कर्म पदार्थके कारण उसमें क्रिया हुई । कोई कहे कि हाथकी क्रिया नहीं होती तो चीज कैसे फेंक दी जाती ? तो उसका उत्तर है कि वह उसका निमित्त कारण है । कर्म पदार्थ उनमें समवायी कारण है, मिला हुआ कारण है । उस कर्म पदार्थने चीजको एक जगहसे दूसरी जगह गमन करा दिया । तीसरा प्रकार है आकुञ्चन । सरल द्रव्य हो, सीधी चीज हो और उसको कुटिल करनेका जो कारण है उस कर्मको कहते हैं आकुञ्चन । जैसे कि अंगुली सीधी है । अब अंगुलीके ऊपर के जो अवयव हैं उनका वहांके आकाश प्रदेशोंसे तो वियोग कर दिया, जिन आकाश प्रदेशोंमें इस अंगुलीके अग्रभागका संयोग था वहांसे तो अलग कर दिया और मूल प्रदेशके साथ संयोग कर दिया याने अंगुलीको जो जड़ है उसके पासके जो आकाश प्रदेश हैं उनके साथ संयोग कर दिया, तो इस प्रकारकी क्रियाका कारणभूत है कर्म पदार्थ । उसका नाम है आकुञ्चन ।

विशेषवादोक्त प्रसारण और गमन नामक कर्मपदार्थका वर्णन—चौथे प्रकारका नाम है प्रसारण । इसमें आकुञ्चनसे विपरीत काम होता है । अर्थात् जैसे अंगुलीके मूल प्रदेशसे मूलमें रहने वाले आकाश प्रदेशसे तो हो गया वियोग और अग्रभागके ऊपरके आकाश प्रदेशका हो गया संयोग ऐसी क्रियाका कारणभूत जो पदार्थ है उसका नाम है प्रसारण नामका पदार्थ । अब ५ वां कर्म है गमन । अनियत दिशा और देशमें संयोग और वियोगका जो कारणभूत है उसे कहते हैं गमन । इन ५ प्रकारोंमेंसे चार प्रकारके कर्मोंकी तो दिशा नियत है कोई डला फेंका तो नियत है कि इस दिशामें एक डला फेंका तो नियत है कि इसी दिशामें यह डला जायगा किसी चीज में अकुञ्चन है तो नियत दिशा है कि वह चीज अपने मूल तक आ सकेगी । और किसी चीजका प्रसारण हो तो उसकी भी दिशा नियत है, पर गमनकी भी दिशा क्या ? नियत है । चलते चलते किसी ओर भी मुड़ जाय इस प्रकार ५ प्रकारके पदार्थ होते हैं । इस तरह शंकाकारने अब तीसरे पदार्थके सद्भावकी बात कही है । सामान्य विशेषात्मक पदार्थके विरोधमें जो ६ पदार्थ कहे थे—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवाय, उनमेंसे यह तीसरे नम्बरका पदार्थ है ।

कर्म पदार्थके सद्भावकी शंकाका समाधान—अब कर्मपदार्थके सद्भावकी शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह ४ प्रकारके कर्म पदार्थोंका वर्णन करना बिना विचारे ही सुन्दर लगता है । उनकी व्याख्या करना, लोगोंको कुछ आश्चर्य जैसी बात में डाल देना । देखो ! कितने सुन्दर शब्दोंमें बताया जा रहा कि ऊपरके आकाश

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रदेशका संयोग होना, नीचेके आकाश प्रदेशका संयोग होना, नीचेके आकाश प्रदेशका वियोग होना, ऐसी क्रिया जिसके द्वारा हो उसे कहते हैं अवक्षेपण नामका कर्म पदार्थ नई व्याख्या, नये शब्द, नया ढंग, बड़ा सुहावना लगता है लेकिन यह तब तक सुहावना लगेगा जब तक इसपर सम्यक दृष्टिसे विचार न किया जाय। विचार करिये तो है क्या उन ५ प्रकारोंमें ? एक देशसे दूसरे देशमें प्राप्ति कराने का कारणभूत परिस्पंदात्मक परिणाम है, और अन्य है क्या ? तथा यह भी कोई बताये कि ५ प्रकार ही क्यों कहा ? उनसे कोई विशिष्ट बात सिद्ध होती है क्या ? उन पांचोंके पांचोंमें यह बात पायी जाती है कि एक देशसे पदार्थ चला और दूसरी जगह पहुंचा। चाहे फिरना हो गिरना हो फैलाव हो, संकोच हो, गमन हो। सब सही बात पायी जाती है. लेकिन उनसे देशसे देशान्तर प्राप्तिरूप बात एक ही है सो वह एक देशसे नवीन देशमें पहुँचनेका कारणभूत जो कुछ है वह पदार्थका स्वयं का परिणमन है। कोई कर्म नामका पदार्थ अलग हो और उसका सम्बन्ध बनाया जाय, फिर चीज चले ऐसा नहीं है। पदार्थमें स्वयं शक्ति है और निमित्त पाकर वह चलता है। तो वह जो चलता है वह पदार्थकी क्रियावती शक्तिका परिणमन है।

पदार्थका अविरुद्धस्वरूप जाननेपर समाधानकी दिशा—पदार्थ वही कहला सकता है जिसमें साधारण गुण पाये जाते हों इस व्याख्यासे चलिये तो यह भी विदित हो जायगा कि यह पदार्थ है अथवा नहीं, या पदार्थकी ही एक विशेषता है— जिसमें अस्तित्व हो वह पदार्थ कहलाता है जो अपने स्वरूपसे हो, पर स्वरूपसे न हो वह पदार्थ कहलाता है। इन दो बातोंको तो हर एकमें घटित किया जा सकता है। गुण है, अपने स्वरूपसे है, पर स्वरूपसे नहीं है। फिर भी बारीकीसे देखा जाय तो "है" ही घटित नहीं होता। 'है" कहते ही उसे हैं जो उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हो। गुण कर्म आदिक पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक नही है। और, सामान्यतया इनमें "है" की भी बात मान लो तो अभी तो ये दो ही गुण कहे हैं। तीसरा गुण है साधारण द्रव्यत्व निरन्तर परिणमता रहे। अब यहाँ पदार्थको अटपट माननेकी बात टूट जाती है। फिर अपनेमें ही परिणमे दूसरेमें न परिणमे। फिर अपना प्रदेश रखता हो। प्रदेशत्व गुणके कहनेसे गुण क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय, इन सबका निराकरण हो जाता है। ये पदार्थ नहीं हैं, इनमें प्रदेश नहीं होते। प्रदेश द्रव्यमें ही होते हैं और प्रदेशवान द्रव्यके सहारे ही गुण कर्म आदिक होते हैं। वस्तु है तो वह प्रदेशवान है।

पदार्थोंकी प्रदेशवत्ताके नियममें सब समाधान—कोई कहे कि यह बेन्च भी पदार्थ है। और, यह ४॥ फिट लम्बी है तो यह लम्बा भी पदार्थ है और यह १॥ फिट चौड़ा है तो यह चौड़ा भी पदार्थ है। और यह थोड़ी सरक गयी तो यह सरकना भी पदार्थ है। अब यों बुद्धिभेदसे जो जो भी बात हो यह छोटे बच्चों जैसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्तर तुम्हारा पदार्थ बना दिया गया, परन्तु पदार्थ हो कौन सकता है ? पहिले इस मूल स्वरूपपर ही तो दृष्टि दो। प्रदेशवान पदार्थमें जो विशेषतायें नजर आयें वह है गुण, कर्म, सामान्य, विशेष। सम्बन्धकी तो जरूरत ही नहीं। यह सब तादात्म्य सम्बन्धसे है। किसीमें है कादाचित्क तादात्म्य और किसीमें है शाश्वत तादात्म्य। जैसे अगुली सीधी है और अब टेढ़ी की गई तो यह टेढ़ापन विशेषवादमें पदार्थ मान लिया। यह टेढ़ापन होना अंगुलीकी एक परिणति है। और इस परिणतिका अंगुली के साथ तादात्म्य है। लेकिन शाश्वत तादात्म्य नहीं। जिस कालमें अंगुलीकी टेढ़ी अवस्था हो रही है उस ही कालमें इस बक्रताका तादात्म्य है जीवमें क्रोध आ रहा है तो यह क्रोध क्या है ? यह एक परिणति है। और, इस परिणतिका जीवमें तादात्म्य उस ही समयमें है जिस समयमें क्रोध परिणमन हो रहा है। यह शाश्वत तादात्म्य नहीं है। परिणतियोंका आधारभूत जो गुण हैं उन गुणोंके साथ शाश्वत तादात्म्य है। तो कर्म नाम हुआ एक देशसे दूसरे देशमें प्राप्तिका कारणभूत परिस्पंदात्मक परिणामका। सो वह पदार्थकी विशेषता है।

कर्म पदार्थ और उसकी पञ्चरूपताकी असिद्धि—इस कर्मके लक्षणमें पाँचों ही प्रकारके कर्मका अन्तर्भाव हो जाता है। जो ५ प्रकारके कर्म बताये गए हैं ऊपर फिकना, नीचे गिरना, संकुचित होना, फैल जाना, गमन, करना इन सबमें देशसे देशान्तरकी प्राप्ति है कि नही ? है। एक जगहसे हटकर दूसरे देशमें पहुँचा यह कर्म सबमें पाया जा रहा है। तो ये ५ क्या रहे ? यह एक कर्म, क्रिया है और एक कर्म, क्रियामें ही इन सबका अन्तर्भाव है। तो एक सामान्य लक्षण एक देशसे दूसरे देशमें पहुंचने रूप क्रियामें पाँचोंका अन्तर्भाव होता है, लेकिन शंकाकार या कोई उसमें उनकी विशेषता देखकर भेद पूर्वक कहे कि भाई, अन्तर्भाव तो जरूर है लेकिन जो उत्क्षेपण है वह अवक्षेपण नही है। फिकनेमें और तरहकी बात है गिरनेमें और तरहकी बात है। इन पाँचोंमें भेद है। इनकी पद्धति न्यारी है इसलिए इन्हें भिन्न-भिन्न ही माना। तो क्रियामें अन्तर्भाव होकर भी पाँचों भिन्न-भिन्न माननेकी हठ की जाय तो फिर ये ५ ही क्यों कहलाते ? बतावो गोल गोल फिरना इसका किसके अन्तर्भाव होगा ? लड़के लोग जो वहीं गोल-गोल घूमते रहते हैं वह उत्क्षेपण नही अवक्षेपण नही, प्रसारण नही, आकुञ्चन नही और गमन नही, इसको कहाँ अन्तर्भाव करोगे ? एक वह भी पदार्थ मानलो। और, बहना, झरना, फिरना, पदार्थोंमें जो चूना होता है उसका किसमें अन्तर्भाव कहोगे ? ऐसी अनेक क्रियायें हैं जो इन ५ में शामिल नही हो सकती, तब फिर कर्म पदार्थ ५ ही हैं यह तो आपका निश्चय न रहा।

यथार्थ पदार्थ व्यवस्था— वास्तविकता यह है कि लोकमें ६ जातिके पदार्थ हैं जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल। इनमेंसे ४ पदार्थ तो निष्क्रिय हैं धर्म, अधर्म, आकाश और काल। ये जहाँ है वहाँ ही अवस्थित हैं। वहाँसे एक प्रदेस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी चलित नहीं हो सकते । आकाश सर्वव्यापक है, सब जगह फैला हुआ है। उसके चलित होनेका प्रश्न ही क्या है ? धर्म अधर्म द्रव्य लोकाकाशमें व्यापक हैं जीव पुद्गल चलें तो उनके गमनमें सहकारी कारण है धर्मद्रव्य। जीव पुद्गल ठहरें तो उनके ठहरने में सहकारी कारण हैं अधर्मद्रव्य । काल द्रव्य लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य अवस्थित है और उस प्रदेशपर रहने वाले पदार्थके परिणमनका कारणभूत है, सो जहाँ काल द्रव्य है वहाँ ही रहता है । केवल क्रियावान द्रव्य दो हैं जीव और पुद्गल, जीवमें क्रिया होती है और पुद्गलमें भी क्रिया होती है । तो यह जो क्रिया हो रही है वह जीव और पुद्गलकी स्वयंकी योग्यतापर और निमित्त सन्निधान पानेपर जैसी क्रियाके लिए जैसी स्थिति चाहिए उस स्थितिके पानेपर क्रिया हो जाती है । तो यह चलन, यह हलन चलन यह चलने वाले पदार्थकी योग्यताकी ही बात है। कोई कर्म नामका पदार्थ दुनियामें एक पड़ा हुआ है और वह इन पदार्थोंको ५ प्रकारसे या अनेक प्रकारसे चलाता रहता है ऐसा कोई कर्म पदार्थ सिद्ध नहीं होता ।

परिणतिलक्षणरूप क्रियाका वर्णन—अब कर्मका अर्थ यदि परिणति लिया जाय तो इसका विस्तार सुनिये ! परिणति होती है दो प्रकारकी बिना क्रिया किए अपने आपमें ही कुछसे कुछ बदलते जाना ऐसी भी परिणति होती है और एक जगह से दूसरी जगह पहुंच जाना यह भी परिणति होती है। परिणति, पर्याय, अवस्था दशा ये सब एकार्थक शब्द हैं । तो परिणतिकी पद्धतियाँ दो हैं—प्रदेशमें परिणति होना, गुणमें परिणति होना । देखिये ! इन बातोंका चतुष्टय आधार है - द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव । द्रव्य तो वह एक चीज है, पिण्डात्मक पदार्थ है और काल उसकी परिणतिका नाम है । तब दो बातें हुईं ना ! द्रव्य होना और परिणमन होना । अब वह परिणमन क्षेत्रमें होता है और भावमें होता है । जो क्षेत्रमें परिणमन हुआ उस का नाम है क्रिया जो भावमें परिणमन हुआ इनका नाम है गुणपर्याय । तो इस तरह परिणतिका द्रव्य प्रदेशमें और द्रव्य गुणोंमें विस्तार होता है । यह सब पदार्थोंमें उनकी योग्यताके अनुसार स्वयमेव होता है। कौन इनका कराने वाला है ? प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है, अपना अपना स्वरूप लिए हुए है । और वह अपने ही स्वरूपसे, अपनी ही सीमामें, अपने ही प्रदेशमें निरन्तर परिणमता रहता है । अब परिणमनमें कारण निमित्त जरूर पड़ते हैं सो निमित्त उपादानमें कोई क्रिया नहीं करते । उनका सन्निधान पाकर उपादानमें उस तरहका परिणमन हो जाता है । जैसे हम चौकीपर बैठे हैं तो चौकीने मुझमें कोई बात नहीं लादी । चौकीकी क्रिया, चौकीका गुण मेरेमें नहीं आया । किन्तु यह मैं उस चौकीका सन्निधान पाकर अपने आपकी क्रियासे अपने आपकी परिणतिमें बैठ गया । बड़े बड़े प्रेरणात्मक प्रयोग भी कहीं हो रहे हों तो वहाँ भी आपको स्वतन्त्रता दिखेगी । इससे अधिक प्रेरणाका और क्या दृष्टान्त दिया जा सकता कि कुम्हार चाकपर रखे हुए मृतपिण्डको दबोचकर फैला रहा है, घटादिक बनानेमें । लेकिन वहां भी कुम्हार उस मृतपिण्डमें कुछ नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर रहा। वह तो अपने हाथमें अपनी क्रिया कर रहा। उस निमित्त सन्निधानको पाकर मिट्टी अपने आपमें फैलनेका काम कर रही है। तो इस घटनामें कुम्हारका द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव सब कुछ कुम्हारमें है, मृत्पिण्डका मृत्पिण्डमें है। यों प्रत्येक पदार्थ अपनी योग्यतासे अपने आपमें अपना परिणमन किया करता है।

यथार्थज्ञान और हितके अवसरको व्यर्थ न खोनेका अनुरोध—स्याद्वाद शासनमें पदार्थोंका कैसा तथ्यभूत वर्णन है कि जिसमें किसी तरहके दोषका कोई प्रसंग ही नहीं है। पदार्थ ६ जातिके बताये इनमें कोई पदार्थ छूटा नहीं। कोई पदार्थ दुबारा आया नहीं। किसीका किसीसे कोई मेल रहा नहीं। उनके भी उनके भी जब प्रकार बताये जाते और नयप्रमाणसे जो विवेचना की जाती, कितनी निर्दोष व्यवस्था है, जिससे वस्तुके सही स्वरूपका यथार्थ परिज्ञान होता। इस अनादि अनन्त कालमें अनेक अज्ञान दशाओंसे निकलकर आज हम आप इतने ज्ञान वाली अवस्थामें आये हैं लेकिन इस ज्ञानका सदुपयोग नहीं किया जा रहा है। ज्ञान उन असार बातोंमें लगाया जा रहा है कि न वे असार बातें रहेंगी न ये मौज रहेंगे। और इससे जो जन्म मरणकी परम्परा बढ़ेगी वह अलग ही बात है। ज्ञानका सदुपयोग यही है कि हम वस्तुके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करें जिससे हमारा वैराग्य पुष्ट हो। और वैराग्य ही एक करने योग्य पुरुषार्थ है। राग छोड़े बिना शान्ति न मिलेगी। और राग भी व्यर्थका। यहां है कौन किसका? पर व्यर्थमें मोह करके हम आप दुखी हो रहे हैं। जैसे सर्पके द्वारा डसे जानेसे मनुष्यके ६–७ बार वेगका असर आया करता है ऐसे ही मोहके वेगसे संसारके प्राणी दुःखी हो रहे हैं। यहाँ है किसीका किसीसे कुछ सम्बन्ध नहीं। सबसे निराला यह आत्मतत्त्व है। उसके जाननेकी दृष्टि करें। वहां ज्ञानोपयोगको लगायें, यही है इस ज्ञानका सदुपयोग। और इससे ही मनुष्य जीवका पाना सफल होगा। इससे मुड़कर असार बाह्य विषयोंमें परिग्रहमें, रागद्वेष के विकल्पोंमें बुद्धिको लगाना यह तो है अपने जीवनका बेकार करना। तो यथार्थ पदार्थकी जानकारीके लिये उत्साह बनाये और अपनेको समझें कि मैं अकिञ्चन केवल अमूर्त चैतन्यमात्र हूं। गृहस्थीमें हों तो सहज श्रमसे जो होता ही हो, गुजारा सब घटनाओंमें किया जा सकता है। लेकिन यथार्थ ज्ञानके उपयोगका लाभ लेना न चूकें। इस हीमें हम आपकी बुद्धिमानी है।

एकरूप द्रव्यमें कर्मकी असम्भवता—विशेषवादमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष समवाय ये जुदे-जुदे स्वतंत्र पदार्थ हैं। अब कल्पना करिये कि द्रव्य जो कि गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवायसे जुदा है, इकला है तो वह द्रव्य तो एकरूप ही रहा ना! जब द्रव्य, गुण, पर्यायात्मक हो तब तो उसे अनेकरूप कह सकते हैं, द्रव्यका परिणमना बता सकते हैं। द्रव्यमें कर्मके सम्बन्धसे परिणमन हो रहा, ठीक है लेकिन द्रव्य स्वयं कैसा है? वह तो कर्मरहित है गुणरहित है। तो गुण, कर्म आदिकसे रहित जो द्रव्य है वह तो जैसा है उस ही रूप एक है। उसमें नानारूपता तो नहीं आ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकती । और, फिर जो आत्मा आदिक हैं वे तो नित्य एकरूप माने हैं। ये हैं विशेष-वादमें जिन द्रव्योंको अनित्य भी माना है वे द्रव्य स्वयं अपने आप तो एक रूप ही हैं, अनित्य कैसे हो सकते हैं। जब गुणसे निराला, कर्मके निराला, सबसे निराला द्रव्य है तो उसमें अनित्यताका क्या रूप रहा ? अनित्यताकी तो बात क्या करें पहिले ऐसा कल्पित द्रव्य सत् ही समझमें नहीं आता, खैर, कल्पनासे मान लो तो द्रव्य एकरूप है उसमें फिर क्रियाका समावेश भी नहीं हो सकता। जो स्वभावसे एक रूप है, नित्य है, वह तो प्रकट एकरूप है, उसमें क्रिया कैसे लग सकती है क्योंकि सदा अविशिष्ट होने से। जो नित्य है वह सदा एक समान रहता है, जो द्रव्य है गुण कर्मसे पृथक है वह भी सदा वैसाका ही वैसा है, अतएव उसमें क्रिया सम्भव नहीं है। जो हमेशा अविशिष्ट है, एक समान है, उसमें क्रिया नहीं लग सकती है। जैसे आकाश सदा समान है। अबसे हजार वर्ष पहिले भी आकाश वैसा ही था, अब भी वैसा ही है, अनन्त काल तक वैसा ही रहेगा। उसमें क्रिया कैसे सम्भव है ?

एकरूप द्रव्यमें क्रियाके संभव न होनेपर प्रश्नोत्तर—शंकाकार कहता है कि रहो पदार्थ एकरूप, लेकिन उनमें गमनका स्वभाव मौजूद है, और जिसमें गमनका स्वभाव मौजूद है उसमें जब क्रिया सम्भव होगा तो वह चलने लगेगा जैसे जिसमें गमनका स्वभाव है वह पदार्थ अभी अवस्थित है, लेकिन कोई धक्का लगे, प्रयोग लगे तो वह चल देता है कि नहीं ? इसी प्रकार पदार्थ एकरूप हैं तो रहे लेकिन उनमें गमनका स्वभाव तो पड़ा हुआ है अतएव क्रियाका समावेश होनेपर उनमें क्रिया होने लगना सिद्ध है। उत्तरमें कहते हैं कि यदि गति स्वभावता मानते हो कि चलमें का उनमें स्वभाव पडा हुआ है तो फिर वे पदार्थ निश्चल न कहला सकेंगे। जो नित्य पदार्थ हैं, अपरिणामी हैं वे भी निश्चल नहीं रह सकते। क्योंकि सदा अब उनमें गमन करनेका ही एकरूप हो जायगा। द्रव्य तो एकरूप रहेगा। चाहे किसी रूप मानलो। गमनके स्वभाव वाला मान लो अथवा निश्चल मान लो। शंकाकार कहता है कि हम पदार्थमें अगंतृरूपता भी मानते हैं अर्थात् चलनेका स्वभाव नहीं है, नहीं चलनेका स्वभाव है ऐसा भी हम अंगीकार करते हैं। उत्तरमें कहते कि ऐसा मानने पर फिर तो आकाशकी तरह अंगता ही हो जायगा सब। जैसे आकाश कभी भी नहीं चलता, इसी तरह कोई भी द्रव्य कभी भी न चल सकेगा। और, यों अगंतृस्वभाव मान लेनेपर चलनेकी स्थितिमें भी इसमें अगन्तृ स्वभाव पड़ा है तब भी अचल कहलायेंगे, क्योंकि अपनी अगन्तृरूपताका उन्होंने त्याग नहीं कर पाया। इससे पदार्थोंमें कर्म पदार्थका सम्बन्ध हो और वह क्रिया करदे, यह बात घटित नहीं होती। ऐसा भी नहीं कह सकते कि इन पदार्थोंमें उभयरूपता है। गमनका भी स्वभाव है और अगमनका भी स्वभाव है। ऐसा यों नहीं कहा जा सकता कि गमनका स्वभाव और अगमनका स्वभाव ये दो परस्पर विरोधी भाव कभी एकरूप नहीं हो सकते। जैसे पर्वत है तो वह अंगता है, निश्चल है, ठहरा हुआ है तो ठहरा हुआ ही रहता है। वायु है तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह गया है। कहीं कोई ऐसी बात वायुमें समझमें आयी क्या कि थोड़ी देरको भी वायु ठहरी हो ? जैसे गाड़ी चलती है तो वह कहीं कहीं ठहरती रहती है इसी तरह से हवा भी कहीं ठहरती हो ऐसा किसीने अनुभव किया है क्या ? उसका तो गमन करनेका ही स्वभाव है। विचारविमर्शके बाद यह सिद्ध होता है कि पदार्थ ही उस प्रकारके परिणमनस्वभाव वाला है।

सर्वथा क्षणिक पदार्थ माननेपर भी क्रियाकी असंभवता—अब कोई क्षणिकवादी शंकाकार कहता है कि चलो नित्य द्रव्यमें तो क्रिया नहीं बन सकती लेकिन जो क्षणिक पदार्थ है उसमें तो क्रिया बन जायगी। उत्तरमें कहते हैं कि पदार्थको क्षणिक माननेपर भी क्रिया नहीं बन सकती। जैसे नित्य पदार्थ है एकान्ततः तो नित्यके मायने जैसा है वैसा ही है, अपरिणामी है। एकस्वरूप है। अदल बदल नहीं होती। तो ऐसे पदार्थमें क्रिया कैसे बन सकती है कि चल देवे, एक जगहसे दूसरी जगहपर ? तो जैसे नित्य पदार्थमें क्रिया सम्भव नहीं है इसी प्रकार क्षणिक पदार्थमें भी क्रिया सम्भव नहीं है। क्षणिकके मायने यह है कि जिस समय पदार्थ उत्पन्न हुआ उसके दूसरे क्षणमें नहीं ठहरता। तो जब पदार्थ जिस जगह उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही वहीं नष्ट हो गया तो उत्पन्न होनेकी जगहमें ही जो नष्ट हुआ हो उसके द्वारा यह बात सम्भव नहीं है कि वह दूसरे प्रदेशपर पहुँच जाय। जो उत्पत्तिकी जगहमें ही नष्ट हो जाता है वह दूसरी जगह पहुँच नहीं सकता। जैसे दीपक जहाँ उजेला किये था उसी जगह यदि बुझ गया तो अब वह दीपक आगे कहां जा सकेगा ? तो क्षणिकवादमें समस्त पदार्थ क्षणिक माने गए हैं। जहां ही पदार्थ उत्पन्न हुआ वहां ही उसी क्षण पदार्थ नष्ट हो गया। तो वह पदार्थ दूसरी जगह कैसे पहुंच सकता है ? तो क्षणिक माननेपर भी पदार्थोंमें क्रिया सम्भव नहीं हो सकती। क्षणिकवादी शंका कर रहा है कि यह तुम्हें भ्रम लग गया है कि कोई पदार्थ एक जगहसे दूसरी जगह पहुँच जाता है। जब पदार्थ क्षणिक है, जहाँ पदार्थ उत्पन्न हुआ वहीं नष्ट हो गया तो यह कैसे सम्भव है कि कोई पदार्थ एक मील तक चला ? प्रत्येक प्रदेशमें नया-नया पदार्थ उत्पन्न होता जा रहा है तुम भ्रम कर रहे हो कि एक ही पदार्थ गया। जैसे तुम्हारा पिता बम्बईसे यहाँ आ गया तो वहाँसे यहाँ तक रास्तेमें जितने प्रदेश पड़े सब जगह एक एक आत्मा नया-नया पैदा होता गया और तुम्हें यह भ्रम हो गया कि हमारा तो वही पिता आ गया। तो इस तरह क्षणिकवादी शंका कर रहा है कि पदार्थ क्षणिक है इसलिये एक जगहसे दूसरी जगहसे वे पदार्थ पहुँच गए ऐसा जो ज्ञान हो रहा है है वह भ्रान्त ज्ञान है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात यों अयुक्त है कि पदार्थ सर्वथा क्षणिक हुआ ही नहीं करते। क्षणिकत्वका निराकरण पहिले विस्तारपूर्वक किया गया है।

जैनशासनके सुदृढ आधारकी शरण्यरूपता—जैन शासनका यह आधार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कितना सुदृढ़ है कि पदार्थ बनता है बिगड़ता है और बना रहता है। ये तीनों खासियतें प्रत्येक पदार्थमें मिलती हैं। आप कोई भी मिसाल ऐसी नहीं दे सकते जो केवल बिगड़ता हो और शेष दो बातें न हों, और जो बना ही रहता हो, उसमें जरा भी बनना बिगड़ना न होता हो। शायद कोई यह कहे कि देखो—मेघोंमें बिजली चमकी और मिट गई। अब वह बनी कहाँ रही ? तो भाई ! वह भी बनी रही। वह भी हमेशा रह रही है। वहां क्या था बिजलीमें ? कोई स्कंध परमाणु चमकदार बन गए, अब वे परमाणु चमकदार न रहे। अंधकाररूप हो गए लेकिन वे परमाणु मिटे कहां ? कभी कोई ऐसी शंका कर सकता कि हम अनेक चीजोंको निरखते हैं—जैसे एक सोनेका डला, तो देखो वह बना रहता है। उसमें बिगड़ना हमें कुछ भी नहीं दिखता। वह डला एक दिन दो दिन अथवा कई महीने तक रखा रहे तो वह तो ज्योंका त्यों दिखता है। वह कहां बिगड़ता है ? तो भाई ऐसी बात नही है। चाहे आपको विदित न हो सके लेकिन वहाँ भी प्रतिक्षण समान समान अथवा कुछ थोड़ी विषम नवीन नवीन अवस्था हो रही हैं। अनेक नवीन परमाणु उसमें आते रहते हैं और अनेक परमाणु उसमें आते रहते हैं और अनेक परमाणु उसमेंसे गिरते रहते हैं। बनना, बिगड़ना और बना रहना ये तीन बातें प्रत्येक पदार्थमें हैं। इसी कारण किसी पदार्थको सर्वथा नित्य नहीं कह सकते और न सर्वथा अनित्य कह सकते। तो जब कोई पदार्थ सर्वथा क्षणिक नही है तो उसमें यह कहना कि क्षणिकमें क्रिया बन जायगी अथवा क्रिया मानना भ्रम है कि एक ही पदार्थ एक जगहसे दूसरी जगह पहुँच गया, यह कहना व्यर्थ है। यह बात यों ठीक नहीं बैठती कि कोई भी पदार्थ न सर्वथा नित्य होता है न अनित्य। एक वस्तु है और क्षण क्षणमें उसमें नवीन नवीन अवस्था बनती रहती हैं।

स्याद्वादकी निर्णयात्मकता नित्यानित्यात्मक माननेपर यह शंका न करना कि फिर तो यह स्याद्वाद संशयात्मक है। अभी कह रहे उसी वस्तुको नित्य है और थोड़ी देरमें कहने लगे कि वस्तु अनित्य है अथवा नित्य है, अनित्य है। किसी एक निर्णयपर ही ये लोग नही पहुँच पाते। नित्यानित्यात्मकके झूलेको झूल रहे हैं, ऐसी संशयवानकी बात नहीं कह सकते, क्योंकि स्याद्वाद निर्णयात्मक है। कुछ लोग इसमें 'भी' का प्रयोग लगाकर बोलते हैं। पदार्थ नित्य 'भी' अनित्य 'भी' है। यह 'भी' का प्रयोग संशयकी ओर संकेत कर बैठता है, और जिस जगह संशय होता है प्राय: करके वहाँ 'भी' शब्द लगा भी करता है यह भी हो सकता है यह भी हो सकता है। अब वहाँ निर्णय तो कुछ न रहा तो 'भी' का सम्बन्ध संशयके साथ ज्यादह हुआ करता है। और लोग स्याद्वादमें 'भी' का प्रयोग अधिक लगाते हैं। आत्मा नित्य भी है, अनित्य भी है, लेकिन इस सम्बन्धमें दो बातें जाननी है। मूल बात तो 'ही' लगाने की है। जो शास्त्र परम्परा है उसके अनुसार 'भी' का प्रयोग नही आ रहा, वहाँ 'ही' का प्रयोग आ रहा है और उस 'ही' का प्रयोग स्यात्के साथ लगता है। अपेक्षाके साथ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लगता है। जिसका सही रूप बनता है स्यात् अस्ति एव, स्यात् नास्ति एव स्यात् अनित्यः एव, स्यात् नित्यः एव। यह आत्मा द्रव्य दृष्टिसे नित्य ही है, यह आत्मा पर्याय दृष्टि से अनित्य ही है। 'ही' का संकेत निश्चयके साथ हुआ करता है। तो पदार्थका धर्म बताते समय अपेक्षा चित्तमें रहती है, और उस अपेक्षाको कोई व्यक्त करे नहीं, केवल समझ लेवे और नवीन अपेक्षाकी बात कहनेको जी चाहे उस हालतमें 'भी' का प्रयोग होता है। तो जो लोग 'भी' का प्रयोग करते हैं उनके भी चित्तमें अपेक्षावाद पड़ा हुआ है। लेकिन अपेक्षा लगावें और 'भी' भी लगावें तो गलत हो जायगा। अपेक्षा लगाकर 'ही' बोलना ही सही रूप है। जैसे एक मनुष्य बालकका पिता भी है और अपने पिता का पुत्र है, मान लो ऐसे तीन व्यक्ति हैं दादा, बाप और बच्चा। अब वहाँ अपेक्षा लगा कर कोई 'भी' लगाये कि यह मनुष्य बच्चेकी अपेक्षा पिता भी है। तो इसका अर्थ यह निकला कि उस बच्चेका वह और कुछ भी लग रहा होगा बच्चा भी लग रहा होगा तो अपेक्षा लगाकर 'भी' का शब्द बोलना गलत हो जायगा। और अपेक्षा लगाकर 'ही' बोला जाय तो सही है। यह बच्चेकी अपेक्षासे बाप ही है। तो स्याद्वादमें दृष्टि रखकर 'ही'का प्रयोग लगाते हैं या बोलकर उसमे हीका प्रयोग बोलना चाहिये। स्याद्वाद संशयवाद नहीं है वह तो दृढ़तासे कहता है कि आत्मा द्रव्य दृष्टिकी अपेक्षा नित्य ही है, दूसरी बात उसमें आ नहीं सकती। इतनी दृढ़ताके निर्णयके साथ स्याद्वाद अपना धर्म रख रहा है। आत्मा पर्याय दृष्टिकी अपेक्षासे अनित्य ही है, उसमें पर्याय दृष्टिसे नित्यता कभी सम्भव ही नहीं। तो स्याद्वाद संशयवाद नहीं है। अपेक्षासे धर्म का अवधारणके साथ प्रतिपादन किया गया है।

कर्मपदार्थके असद्भावके कथनका उपसंहार— यहाँ इस प्रसंगमें बात कही जा रही है कि न तो सर्वथा नित्य पदार्थमें क्रिया सम्भव है और न सर्वथा क्षणिक पदार्थमें क्रिया सम्भव है। इस कारण परिणमनशील पदार्थमें ही क्रिया उत्पन्न हो सकती है। अब कर्मके सम्बन्धमें विचार करिये ! यह क्रिया, यह कर्म कोई पदार्थ है क्या ? यह कर्म जिस पदार्थमें हो रहा है उस पदार्थको छोड़कर भिन्न कोई चीज नहीं है। पदार्थ द्रव्य अलग हो और कर्म अलग हो, फिर कर्मका पदार्थमें सम्बन्ध जुटे तब उसमें क्रिया बने ऐसी बात नहीं है। परिणमनशील, क्रियाशील पदार्थको छोड़कर अन्यत्र और कोई कर्म नामका पदार्थ नहीं है, क्योंकि जो बात पाई जा सकती है और वह न पाई जाय तो इसका अर्थ है कि वह नहीं है। जैसे टेबिल पाई जा सकती है, आंखों दिख सकती है। यदि कमरेमें वह न दिखे तो इसका अर्थ यही हुआ ना, कि कमरेमें टेबिल नहीं है। तो जो चीज दिख सकती है, पाई जा सकती है फिर पाई न जाय उसको कह सकते हैं कि वह है नहीं। तो कर्म पदार्थ पाया जा सकता है वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार दिख सकता है। विशेषवादमें यह सिद्धान्त स्थापित किया है कि संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग परत्व, अपरत्व और कर्म। इतनी बातें रूपी पदार्थोंके समवायसे आँखों दिखने लगती हैं। तो इसमें कर्मको भी चाक्षुष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बताया है। कर्म भी उपलब्ध हो सकता है तो जो चीज उपलब्ध हो सकती है वह कभी उपलब्ध न हुई हो, किसीको आँखों दिखे न हो, तो इसके मायने है कि वह असत् है, तो कर्म नामका पदार्थ असत् है। कोई अलग दिखता हो कि यह है क्रिया इससे हो रहा है पदार्थका हलन चलन, ऐसा कर्म नामका कोई पदार्थ अलगसे नहीं है।

पदार्थके यथार्थ स्वरूपके परिचयमें शान्तिका लाभ—देखो भैया ! बात कितनी सीधी थी कि उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक पदार्थ होता है। जिसमें बनना, बिगड़ना और बना रहना ये तीन बातें पायी जाती हैं वह एक पदार्थ है और वह पदार्थ इसी कारण परिणमता रहता है और उसकी शक्तियाँ उसमें निरन्तर बनी रहती हैं और उनमें जो सामान्य धर्म है, जो शक्तियाँ हैं, जो अन्यमें भी पायी जा जा सकें वह सामान्य कहलाता है। और जो ऐसे धर्म हैं असाधारण, जो दूसरेमें न पाये जा सकें वे विशेष हैं। सारा मामला एक पदार्थमें घटित करनेका था और वे सबके सब एक ही थे, लेकिन, जब कोई अपनी बुद्धिमानीकी योग्यतासे भी बाहर परिचय कराना चाहता हो तो वह ऐसी ही बात कह बैठेगा जो बेतुकी हो और सम्भव न हो सके। विशेषवादकी हठने एक ही पदार्थको समझानेके लिए जो भेद किये जा रहे थे उन्हें ही सब कुछ मान लिया, और द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये सब जुदे जुदे पदार्थ स्वीकार किये। लेकिन यह तो बतलावो कि इस तरहकी पदार्थ की व्यवस्था बनानेमें एक दिमागी श्रम ही किया जाय। इसके अतिरिक्त और मिलता क्या है ? पदार्थका पूरा रूप भी न आ सका और पदार्थके स्वरूपकी जानकारीकी भी पूर्णता न हो सकी, फिर सन्तोष पाना, विश्राम लेना। आत्महितमें लगना इनका तो अवकाश हो क्या है। जिसकी दृष्टिमें प्रत्येक पदार्थ साधारण और असाधारण गुणस्वरूप है। अपने ही स्वभावसे वे हैं, अपने ही स्वभावसे वे परिणमते हैं, अपने में ही परिणमते हैं अपनेमें अपनी खासियत रखते हैं ऐसी जब सब पदार्थोंकी व्यवस्था है तो सब पदार्थ स्वतन्त्र हैं। किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। किसी पदार्थको किसी दूसरे पदार्थकी कुछ अपेक्षा भी नहीं करनी पड़ रही है। ऐसी स्वतन्त्रता और परिपूर्णता विदित होती है।

अखण्ड पदार्थको बुद्धिमें छिन्न भिन्न बनानेसे सिद्धिका अभाव—जिसके यहाँ द्रव्य, गुण, कर्म न्यारे-न्यारे पदार्थ हैं उनको तो बड़ी अपेक्षा लगी हुई है। अच्छा बतलावो–गुण, क्रिया, परिणमन सामान्य, विशेष आदिक शून्य द्रव्यकी क्या स्थिति है ? क्या स्वरूप है ? कुछ स्वरूप घटित नहीं होता। और, कुछ सत्ता भी नहीं विदित हो पाती। और, ऐसा कोई द्रव्य रहता भी नहीं। तब देखो ! उस द्रव्यको कायम रखनेके लिए गुण कर्म, सामान्य आदिक सबके सम्बन्धकी अपेक्षा बनानी पड़ी। तो चले तो थे वस्तुको अत्यन्त भिन्न-भिन्न करके पूर्ण स्वतंत्र बतानेके लिए और आ गयी अत्यन्त परतंत्रता। जैसे-एक कहावत है कि चौबे गये तो थे छबे होनेके लिए और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रह गए दुबे । दो गोत्र होते हैं चौबे और दुबे । जो दो वेदोंके जानकार हैं उन्हें दुबे और जो चार वेदोंके जानकार हैं उन्हें चौबे कहते हैं। फिर वेदके होते हैं ६ अंग उन सबकी बातें अथवा चार वेदोंसे आगेकी बातें जाननेके लिए अर्थात् छबे होनेके लिए अब चौबे चले, पर रह गए दुबे। अथवा जैसे कोई पुरुष चले तो किसी ऊँचे पदको पानेके लिए और वह पहिले वाले पदसे भी हट जाय, तो जो उसकी स्थिति है वैसी ही स्थिति विशेषवादियोंकी है । वे पदार्थोंमें बुद्धि भेदसे भिन्न-भिन्न जो कुछ ध्यानमें आया उसे भिन्न-भिन्न स्थापित करके स्वतंत्र निरंश निरपेक्ष अपनी बहुत सूक्ष्म इकाईमें लानेकी बात कर रहे थे, लेकिन वहाँ सत्त्व ही बिगड़ जाता है । गुण, कर्म आदिसे निरपेक्ष द्रव्यकी क्या स्थिति है । तो इस तरह जो सामान्य विशेषात्मक पदार्थ विरोधमें विशेषवादी यह कह रहे थे कि सामान्य विशेष स्वयं पदार्थ है । तदात्मक पदार्थ क्या हो सकता है । और द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इस तरह ६ पदार्थोंकी योजना बना रहे थे उनकी इस योजनामें द्रव्य, गुण, कर्म इन तीन प्रकारके पदार्थोंका निराकरण किया है । अब सामान्य आदिक शेष तीन पदार्थोंका निराकरण आगे चलेगा ।

Version 1